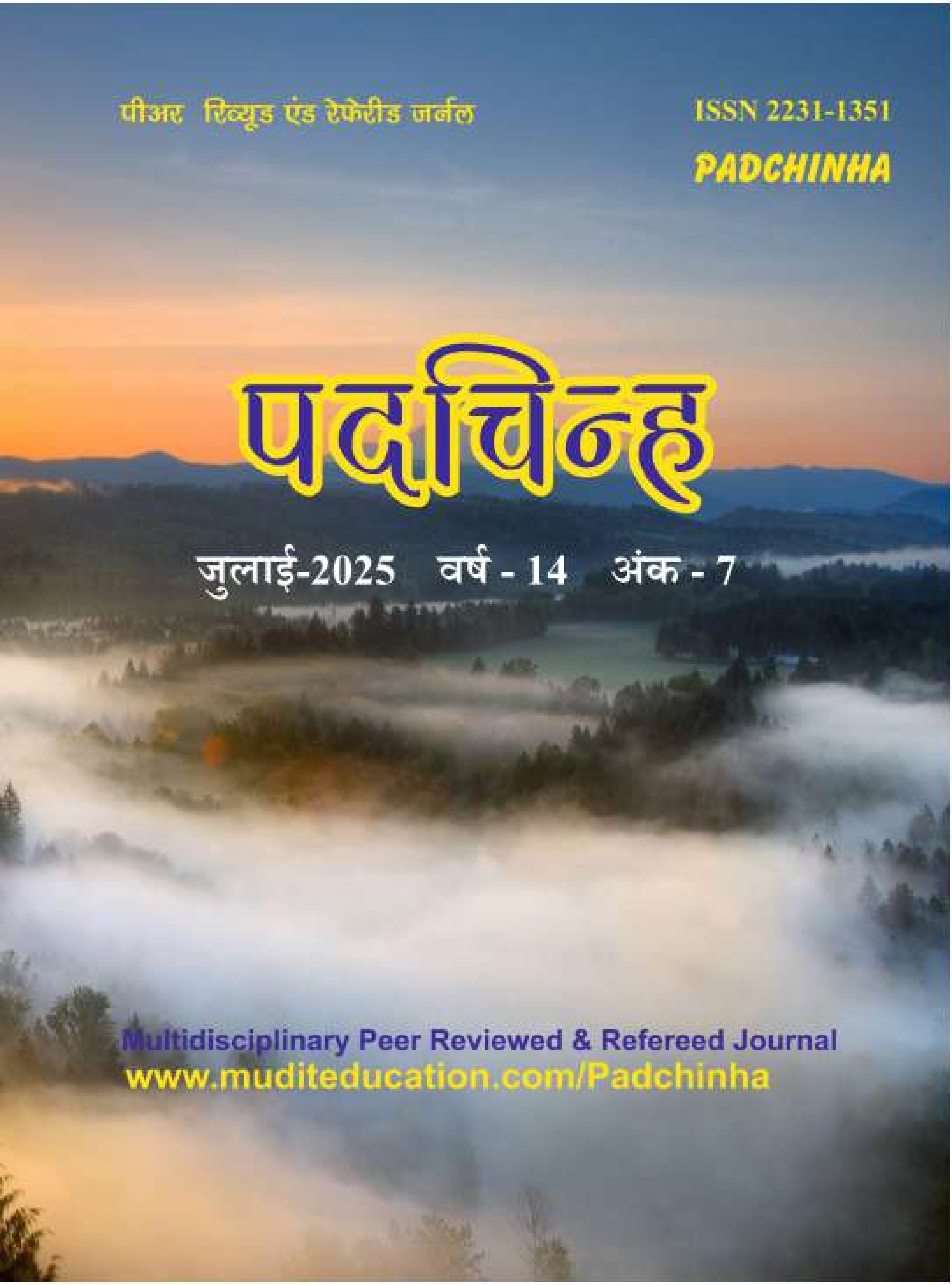

पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

पदचिन्ह

जुलाई-2025 वर्ष - 14 अंक - 7

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

www.muditeducation.com/Padchinha

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

Impact Factor (IIFS): 8 यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

पदचिन्ह PADCHINHA

जुलाई (July) 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 7

संपादक

डॉ. अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

निदेशक, मुदित शिक्षा संस्था, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड - 442001

Mob. 9823696685 **padchinha@muditeducaton.com**

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

www.muditeducation.com/Padchinha

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन - 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन - 737102

प्रो. अमरेन्द्र त्रिपाठी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन - 211002

डॉ. परिमल प्रियदर्शी
अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय
बहुद्देशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल
प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन - 812007

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित. संपादक : अजय परमार

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित Impact Factor (IIFS): 8

पदचिन्ह PADCHINHA

जुलाई (July) 2025 वर्ष (Vol.): 14 अंक (Issue): 7

अनुक्रम

संपादकीय पृष्ठ संख्या

1. सामाजिक (सोशल) मीडिया का युवा पीढ़ी पर प्रभाव _**डॉ. ममता पारीक** 01-08
2. मारवाड़ (जोधपुर रियासत) में राठौड़ों का शासन और उनका प्रशासनिक ढांचा _**गौरव पाण्डेय** 09-18
3. संस्कृतवाङ्मये कृषि-विज्ञानम्_**डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे** 19-22
4. प्रेमचंद की कहानियों में भारत बोध _**डॉ. अशोक नाथ त्रिपाठी** 23-28
5. बचपन में भावनात्मक उपेक्षा का वयस्क जीवन में व्यवहार पर प्रभाव _**डॉ. वर्तिका** 29-36
6. उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों का आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन _**वर्तिका सिंह _डॉ शिखा बनर्जी** 37-44
7. संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मलित भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग _**पूजा यादव _प्रो. नवीन चंद्र लोहनी** 45-49
8. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवन मूल्यों की समीक्षा _**साहेबु देवशर्मा** 50-60
9. Vikshit Bharat 2047: Resonating with The Voice of Youth - Inspired by Hindi Movie Laapataa Ladies on OTT _**Prernna Mishra _Dr. Aditya Kumar Mishra** 61-69
10. प्रतिरोध की संस्कृति, भाषा एवं औपनिवेशिक मनोविज्ञान : फ्रांज फैनन की दृष्टि से _**योगेश कुमार जांगिड़** 70-75
11. मुगलकालीन शाही महिलाओं का सांस्कृतिक योगदान (स्थापत्यकला व चित्रकला के विशेष संदर्भ में) _**डॉ. लाला बाबू** 76-80
12. 21 वीं सदी का युवा वर्ग और 'दौड़' उपन्यास का समकाल _डॉ. शेख उस्मान 81-85
13. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : महिलाओं की समानता के प्रणेता _**रानी मिश्रा _डॉ. दीपक कुमार दिनकर** 86-91
14. नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री वेदना का स्वर _**राजेश कुमार यादव** 92-95
15. हिंदी उपन्यास में रामकथा की परम्परा _**शेखर सुमन** 96-99
16. महानदी पार क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन : सरायपाली के विशेष संदर्भ में _**Mahettar Lal Yadaw_Rupendra Kumar** 100-105
17. हिंदी का वैश्विक सन्दर्भ _**डॉ. सत्य प्रकाश पाल** 106-109
18. साठोत्तरी दशक के कथाकारों के साहित्य में स्त्री चिंतन _**प्रतिमा** 110-116
19. स्वयं प्रकाश का रचनात्मक उपादान _**गणेश कुमार साव** 117-121

संपादकीय

हमें यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि *पदचिन्ह* का यह जुलाई 2025 अंक अपने विषय-विस्तार और शोध की विविधता के कारण विशेष महत्व रखता है। हमारा उद्देश्य सदैव यह रहा है कि यह पत्रिका न केवल शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो, बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी समसामयिक एवं प्रासंगिक विषयों पर विचार-विमर्श का मंच बने।

इस अंक में सम्मिलित शोध आलेख आज के सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक परिदृश्य की गहन पड़ताल करते हैं। डॉ. ममता पारीक का लेख *"सामाजिक (सोशल) मीडिया का युवा पीढ़ी पर प्रभाव"* आज के डिजिटल युग में युवाओं की सोच, जीवनशैली और संबंधों पर सोशल मीडिया के व्यापक असर का विश्लेषण करता है। गौरव पाण्डेय का शोध *"मारवाड़ (जोधपुर रियासत) में राठौड़ों का शासन और उनका प्रशासनिक ढांचा"* हमें ऐतिहासिक प्रशासनिक प्रणाली की जटिलताओं से रूबरू कराता है।

संस्कृतवाङ्मय और भारतीय ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ाते हुए डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे का लेख *"संस्कृतवाङ्मये कृषि-विज्ञानम्"* कृषि-विज्ञान के प्राचीन स्रोतों का विवेचन करता है। साहित्य प्रेमियों के लिए डॉ. अशोक नाथ त्रिपाठी का लेख *"प्रेमचंद की कहानियों में भारत बोध"* विशेष आकर्षण का केंद्र है। वहीं मनोविज्ञान के शोधार्थियों के लिए डॉ. वर्तिका का अध्ययन *"बचपन में भावनात्मक उपेक्षा का वयस्क जीवन में व्यवहार पर प्रभाव"* एक महत्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत करता है। शिक्षा के क्षेत्र में वर्तिका सिंह एवं डॉ. शिखा बनर्जी का शोध *"उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों का आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन"* समावेशी शिक्षा के व्यवहारिक पहलुओं पर दृष्टिपात करता है। भाषाई विमर्श को समृद्ध करता है पूजा यादव और प्रो. नवीन चंद्र लोहनी का शोध *"संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग"*।

साहित्य और संस्कृति की धारा को आगे बढ़ाते हुए साहेबु देवशर्मा का लेख *"महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवन मूल्यों की समीक्षा"* शाश्वत जीवन मूल्यों की पुनर्पुष्टि करता है। वर्तमान युवा दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता प्रेरणा मिश्रा और डॉ. आदित्य कुमार मिश्रा का शोध *"Vikshit Bharat 2047: Resonating with The Voice of Youth - Inspired by Hindi Movie Laapataa Ladies on OTT"* विशेष चर्चा का विषय है।

इतिहास और समाजशास्त्र में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए योगेश कुमार जांगिड़ का आलेख *"प्रतिरोध की संस्कृति, भाषा एवं औपनिवेशिक मनोविज्ञान : फ्रांज फैनन की दृष्टि से"* उपनिवेशवाद की मानसिक जटिलताओं को खोलता है। डॉ. लाला बाबू का शोध *"मुगलकालीन शाही महिलाओं का सांस्कृतिक योगदान"* भारतीय सांस्कृतिक धरोहर में स्त्रियों की रचनात्मक भूमिका का प्रमाण है।

साहित्यिक विमर्श को आगे बढ़ाते हुए इस अंक में डॉ. शेख उस्मान का शोध *"21वीं सदी का युवा वर्ग और 'दौड़' उपन्यास का समकाल"*, रानी मिश्रा एवं डॉ. दीपक कुमार दिनकर का लेख *"डॉ. भीमराव अम्बेडकर : महिलाओं की समानता के प्रणेता"*, तथा राजेश कुमार यादव का आलेख *"नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री वेदना का स्वर"* अत्यंत पठनीय हैं।

इसके साथ ही शेखर सुमन का शोध *"हिंदी उपन्यास में रामकथा की परम्परा"*, महेत्तर लाल यादव एवं रूपेन्द्र कुमार का *"महानदी पार क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन"*, डॉ. सत्य प्रकाश पाल का *"हिंदी का वैश्विक सन्दर्भ"*, प्रतिमा का *"साठोत्तरी दशक के कथाकारों के साहित्य में स्त्री चिंतन"*, और गणेश कुमार साव का आलेख *"स्वयं प्रकाश का रचनात्मक उपादान"* इस अंक को एक समृद्ध शोध-संग्रह बनाते हैं।

हम आशा करते हैं कि यह अंक पाठकों में न केवल बौद्धिक जिज्ञासा को जागृत करेगा बल्कि नए विमर्शों के लिए प्रेरणा भी देगा। शोध और सृजन का यह संवाद निरंतर चलता रहे, यही हमारी शुभेच्छा है।

सामाजिक (सोशल) मीडिया का युवा पीढ़ी पर प्रभाव

डॉ. ममता पारीक*

mamtapareek2012@gmail.com

सारांशः-

21वीं सदी में सोशल मीडिया केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि शिक्षा, कैरियर, मनोरंजन, व्यापार, सामाजिक जागरूकता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक प्रभावशाली मंच बन चुका है। सोशल मीडिया युवाओं को वैश्विक ज्ञान, पेशेवर अवसर, रचनात्मक अभिव्यक्ति और सामाजिक जुड़ाव का मंच प्रदान करता है। यह शिक्षा को अधिक सुलभ और इंटरैक्टिव बनाता है, उद्यमिता को प्रोत्साहन देता है तथा सामाजिक आंदोलनों को गति प्रदान करता है। दूसरी ओर, इसका अनियंत्रित और अत्यधिक उपयोग मानसिक तनाव, चिंता, अवसाद, समय की बर्बादी, साइबर अपराध, गोपनीयता हनन, सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण और वास्तविक सामाजिक संबंधों में कमी जैसी गंभीर समस्याओं को जन्म देता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, सोशल मीडिया युवा मस्तिष्क के रिवार्ड सिस्टम को प्रभावित करता है, जिससे लत, सामाजिक तुलना, FOMO (Fear of Missing Out) और आत्म-छवि विकृति जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से यह पारिवारिक संवाद, भाषा शैली, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और जीवनशैली में गहरे बदलाव लाता है। आर्थिक दृष्टि से यह नए रोजगार, डिजिटल मार्केटिंग, कंटेंट क्रिएशन और ई-कॉमर्स के अवसर प्रदान करता है, लेकिन उपभोक्तावाद और असमानता जैसी चुनौतियाँ भी लाता है। निष्कर्षतः, सोशल मीडिया न तो पूर्णतः लाभकारी है और न ही पूर्णतः हानिकारक इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि युवा इसे कितनी जिम्मेदारी, संतुलन और सकारात्मक दृष्टिकोण से उपयोग करते हैं। उचित डिजिटल साक्षरता, मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता, समय प्रबंधन और सशक्त साइबर सुरक्षा नीतियों के माध्यम से सोशल मीडिया को व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति का एक सशक्त उपकरण बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द :

सामाजिक मीडिया, युवा पीढ़ी, मानसिक स्वास्थ्य, डिजिटल पहचान और व्यवहार, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावनाः-

21वीं सदी को यदि "डिजिटल युग" कहा जाए तो यह बिल्कुल अनुचित नहीं होगा। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के सम्मिलित प्रभाव से संचार की परिभाषा ही बदल गई है। इन तकनीकी परिवर्तनों का सबसे महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभाव जिस माध्यम के रूप में दिखाई देता है, वह है सामाजिक (सोशल) मीडिया।

सामाजिक मीडिया एक ऐसा आभासी मंच है जो विश्व के कोने-कोने में बैठे लोगों को एक-दूसरे से तुरंत जोड़ने, संवाद स्थापित करने, विचार साझा करने और व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने का अवसर प्रदान करता है। पारंपरिक मीडिया (जैसे-अखबार, रेडियो, टेलीविजन) जहाँ एकतरफा सूचना प्रसारित करते थे, वहीं सामाजिक मीडिया ने इस प्रक्रिया को द्विपक्षीय, इंटरैक्टिव और त्वरित बना दिया है।

* **सहायक आचार्य, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ**

आज का युवा - जिसे हम "डिजिटल नेटिव" भी कह सकते हैं - इस सामाजिक मीडिया क्रांति का मुख्य केंद्र है। 1995 के बाद जन्मी पीढ़ी इंटरनेट और स्मार्ट उपकरणों के साथ पली-बढ़ी है। उनके लिए मोबाइल फोन और सोशल मीडिया केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि जीवन शैली का अभिन्न अंग बन चुका है। सुबह नींद खुलते ही सोशल मीडिया नोटिफिकेशन चेक करना और रात को सोने से पहले इंस्टाग्राम, फेसबुक या यूट्यूब स्क्रॉल करना, यह अब एक सामान्य आदत है।

सामाजिक मीडिया का युवा पीढ़ी पर प्रभाव बहुआयामी है। एक ओर यह उन्हें ज्ञान, सूचना, सामाजिक जागरूकता, पेशेवर अवसर और रचनात्मक अभिव्यक्ति के असीमित साधन देता है दूसरी ओर यह मानसिक तनाव, सामाजिक अलगाव, समय की बर्बादी, और गलत सूचना के प्रसार जैसे गंभीर मुद्दे भी उत्पन्न करता है। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा 18-35 वर्ष आयु वर्ग में आता है, सामाजिक मीडिया का प्रभाव और भी गहरा है। 2024 के आँकड़ों के अनुसार, भारत में 820 मिलियन से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं, जिनमें से लगभग 65% युवा वर्ग से संबंधित हैं। यह वर्ग न केवल सोशल मीडिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता है, बल्कि इसके रुझानों को भी निर्धारित करता है।

सामाजिक मीडिया ने युवा पीढ़ी के सोचने, समझने और जीने के तरीके को बदल दिया है। अब किसी भी विषय पर त्वरित प्रतिक्रिया देना, सामाजिक मुद्दों पर डिजिटल अभियान चलाना, नए व्यवसाय (स्टार्टअप) शुरू करना, ऑनलाइन पढ़ाई करना या कला, संगीत और फोटोग्राफी में अपनी प्रतिभा दिखाना - ये सब सोशल मीडिया के माध्यम से संभव है। वहीं दूसरी ओर, साइबर बुलिंग, गोपनीयता का हनन, "वर्चुअल" और "वास्तविक" जीवन के बीच बढ़ता अंतर, और तुलना की प्रवृत्ति से उत्पन्न हीन भावना जैसी चुनौतियाँ भी तेजी से बढ़ रही हैं।

शोध की दृष्टि से यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि युवा ही वह वर्ग है जो आने वाले समय में देश और समाज की दिशा तय करेगा। यदि सोशल मीडिया के उपयोग में संतुलन और सकारात्मकता बनाए रखी जाए, तो यह युवा शक्ति को एक नई ऊँचाई दे सकता है लेकिन यदि इसका दुरुपयोग या अत्यधिक उपयोग हुआ, तो यह सामाजिक ताने-बाने और व्यक्तिगत जीवन दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यही है कि युवाओं को यह समझाया जाए कि सोशल मीडिया एक साधन है, साध्य नहीं। इसका विवेकपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण उपयोग ही उन्हें व्यक्तिगत सफलता, सामाजिक योगदान और मानसिक संतुलन प्रदान कर सकता है।

सामाजिक मीडिया की परिभाषा और भारत में विकास :-

"सामाजिक मीडिया" शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - "सामाजिक" और "मीडिया"। "सामाजिक" का अर्थ है लोगों के बीच संबंध, संवाद और सहभागिता। जबकि "मीडिया" का अर्थ है-सूचना या संदेश के आदान-प्रदान का माध्यम। इस प्रकार, सामाजिक मीडिया वह डिजिटल मंच है जो लोगों को इंटरनेट के माध्यम से आपस में जोड़ता है, उन्हें अपनी बातें, विचार, तस्वीरें, वीडियो और अन्य प्रकार की सामग्री बनाने, साझा करने और प्रतिक्रिया देने की सुविधा प्रदान करता है। सामाजिक मीडिया पारंपरिक

मीडिया से कई दृष्टियों से अलग है। पारंपरिक मीडिया जैसे-अखबार, रेडियो और टेलीविजन एकतरफा (One-way) सूचना का आदान-प्रदान करते हैं, जहाँ केवल प्रसारक (Broadcaster) ही संदेश भेज सकता है और श्रोता या दर्शक मात्र उसे ग्रहण कर सकते हैं। इसके विपरीत, सामाजिक मीडिया द्विपक्षीय (Two-way) संवाद की सुविधा देता है, जहाँ उपयोगकर्ता न केवल जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि उसे संशोधित, साझा और उस पर प्रतिक्रिया भी दे सकते हैं।

भारत में सोशल मीडिया का वास्तविक विस्तार 2010 के बाद शुरू हुआ, जब सस्ते स्मार्टफोन और इंटरनेट पैक उपलब्ध हुए। पहले यह शहरी युवाओं तक सीमित था, लेकिन 2016 के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसकी पहुँच तेजी से बढ़ी। आज भारत फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म के सबसे बड़े उपयोगकर्ता समूहों में शामिल है। सरकारी विभाग भी अब सोशल मीडिया का उपयोग जनसंपर्क, सूचना प्रसार और शिकायत निवारण के लिए करने लगे हैं। वहीं, व्यवसायिक क्षेत्र में डिजिटल मार्केटिंग ने इसे एक अत्यंत प्रभावी विज्ञापन माध्यम बना दिया है।

युवा पीढ़ी और सोशल मीडिया का संबंध :-

21वीं सदी की शुरुआत से ही यह स्पष्ट हो गया था कि तकनीक आने वाली पीढ़ी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा बनने वाली है। "युवा पीढ़ी" शब्द का आशय यहाँ 15 से 35 वर्ष के आयु वर्ग से है, जिसे भारत में सबसे बड़ी जनसंख्या का हिस्सा माना जाता है। यह वही वर्ग है जो डिजिटल क्रांति के साथ पला-बढ़ा है, और जिसने अपने जीवन के हर चरण में तकनीकी बदलावों को न केवल देखा बल्कि अपनाया भी है।

युवाओं में सोशल मीडिया की लोकप्रियताः

युवाओं के लिए सोशल मीडिया केवल एक संचार माध्यम नहीं, बल्कि जीवन शैली (Lifestyle) का हिस्सा है। सुबह नींद खुलने के बाद सबसे पहले मोबाइल फोन उठाकर नोटिफिकेशन देखना, दिन भर में कई बार सोशल मीडिया फीड स्क्रॉल करना और रात को सोने से पहले आखिरी बार अपडेट चेक करना - ये आदतें अब एक सामान्य व्यवहार बन चुकी हैं। 2024 के आँकड़ों के अनुसार, भारत में औसत युवा प्रतिदिन लगभग 2.5 से 3.5 घंटे सोशल मीडिया पर बिताता है, जबकि कुछ मामलों में यह समय 5-6 घंटे तक भी पहुँच जाता है।

डिजिटल पहचान और युवाओं की आत्म-छविः

सोशल मीडिया ने युवाओं को "डिजिटल पहचान" (Digital Identity) दी है, जो उनकी वास्तविक पहचान के समानांतर चलती है। इंस्टाग्राम पर पोस्ट की गई तस्वीरें, यूट्यूब पर डाले गए वीडियो, या लिंक्डइन पर लिखा गया प्रोफाइल - ये सब उनके बारे में एक आभासी छवि (Virtual Image) बनाते हैं। युवाओं के लिए यह डिजिटल पहचान आत्म-गौरव, लोकप्रियता और आत्म-सम्मान का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुकी है। हालांकि, यह कभी-कभी "सोशल कंपैरिजन" यानी दूसरों से तुलना की प्रवृत्ति को जन्म देती है, जो मानसिक तनाव का कारण बन सकती है।

शिक्षा और कैरियर में सोशल मीडिया की भूमिका:

आज के समय में सोशल मीडिया केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि शिक्षा और कैरियर निर्माण के लिए भी उपयोगी साबित हो रहा है। यूट्यूब पर शैक्षणिक चैनल, लिंक्डइन पर प्रोफेशनल नेटवर्किंग, और व्हाट्सएप ग्रुप में अध्ययन सामग्री का आदान-प्रदान करना। डिजिटल मार्केटिंग, कंटेंट क्रिएशन, फ्रीलांसिंग और इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग जैसे नए रोजगार विकल्पों की उपलब्धता।

सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव:

युवाओं में सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव सामाजिक और सांस्कृतिक आदतों को भी बदल रहा है। पारंपरिक मेल-जोल की जगह अब वीडियो कॉल और चैट ने ले ली है। सांस्कृतिक विविधता का आदान-प्रदान तेज हुआ है - भारत का युवा अमेरिकी पॉप म्यूजिक सुनता है और जापान का युवा बॉलीवुड डांस करता है। सामाजिक मुद्दों पर ऑनलाइन कैंपेन चलाना आम हो गया है।

भावनात्मक जुड़ाव और सामाजिक स्वीकृति:

सोशल मीडिया ने युवाओं को "लाइक्स", "कमेंट्स" और "फॉलोअर्स" के रूप में एक नया सामाजिक मानदंड दे दिया है। पोस्ट पर अधिक लाइक्स मिलना आत्मविश्वास बढ़ाता है, जबकि कम प्रतिक्रिया मिलने पर निराशा भी होती है। यह भावनात्मक जुड़ाव कई बार उन्हें वास्तविक जीवन की अपेक्षा आभासी जीवन में अधिक समय बिताने के लिए प्रेरित करता है।

सामाजिक मीडिया के सकारात्मक प्रभाव :-

सामाजिक मीडिया को लेकर अक्सर नकारात्मक पहलुओं की चर्चा अधिक होती है, लेकिन इसके सकारात्मक और रचनात्मक प्रभावों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सही दिशा में, नियंत्रित और उद्देश्यपूर्ण उपयोग के साथ, सोशल मीडिया न केवल व्यक्तिगत विकास बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति में भी योगदान दे सकता है। विशेषकर युवा पीढ़ी के लिए यह एक ऐसा मंच है जो शिक्षा, रोजगार, सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और रचनात्मक अभिव्यक्ति के अनगिनत अवसर प्रदान करता है।

सोशल मीडिया ने ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया को आसान, सुलभ और तेज बना दिया है। यूट्यूब, खान अकादमी, कोर्सेरा और अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर मुफ्त शैक्षणिक वीडियो, व्याख्यान और ट्यूटोरियल उपलब्ध हैं, जिन्हें युवा कहीं भी, कभी भी देख सकते हैं। व्हाट्सएप और टेलीग्राम पर शैक्षणिक समूह बनाकर विद्यार्थी आपस में नोट्स, किताबें और अध्ययन सामग्री साझा करते हैं। लिंक्डइन और ट्विटर जैसे प्लेटफॉर्म के माध्यम से विद्यार्थी विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों से सीधे प्रश्न पूछ सकते हैं और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

आज सोशल मीडिया ने रोजगार और पेशेवर अवसरों का एक नया संसार खोल दिया है। पेशेवर नेटवर्किंग के लिए लिंक्डइन सबसे प्रभावी माध्यम बन गया है, जहाँ युवा अपना रिज्यूमे, कौशल और उपलब्धियाँ प्रदर्शित कर सकते हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से ग्राफिक डिजाइन, कंटेंट राइटिंग, डिजिटल

मार्केटिंग, वीडियो एडिटिंग आदि के फ्रीलांस प्रोजेक्ट आसानी से मिल सकते हैं। नए उद्यमी अपने स्टार्टअप का प्रचार इंस्टाग्राम, फेसबुक और यूट्यूब पर कम लागत में कर सकते हैं।

सोशल मीडिया ने सामाजिक मुद्दों के प्रति युवाओं में जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आपदा प्रबंधन में भी सोशल मीडिया सहायक साबित हुआ है - बाढ़, भूकंप या महामारी के दौरान मदद के संदेश, राहत कार्य और दान अपीलें सोशल मीडिया पर तेजी से फैलती हैं।

सोशल मीडिया ने युवाओं को अपनी रचनात्मकता और प्रतिभा प्रदर्शित करने का खुला मंच दिया है। यूट्यूब, इंस्टाग्राम और टिकटॉक पर गायक, नर्तक और कलाकार अपने वीडियो साझा कर लोकप्रियता हासिल कर सकते हैं। मीडियम, क्वोरा और इंस्टाग्राम राइटिंग पेज पर युवा अपनी कविताएँ, कहानियाँ और विचार साझा कर सकते हैं। इंस्टाग्राम और पिंटरेस्ट ने शौकिया फोटोग्राफरों को वैश्विक दर्शक वर्ग से जोड़ा है।

सोशल मीडिया ने भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाएँ तोड़ दी हैं। अब युवा विभिन्न देशों की परंपराएँ, भाषा, संगीत और फैशन के बारे में सीधे जान सकते हैं। इससे सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान और सहिष्णुता बढ़ी है। पहले जानकारी प्राप्त करने या संवाद स्थापित करने में समय और दूरी बाधा बनते थे, लेकिन सोशल मीडिया ने इस अंतर को लगभग समाप्त कर दिया है। अब कोई भी सूचना सेकंडों में दुनिया के किसी भी कोने तक पहुँच सकती है, जिससे युवाओं के अवसर और दृष्टिकोण दोनों विस्तृत हुए हैं।

सोशल मीडिया ने युवाओं को छोटे पैमाने पर भी व्यवसाय शुरू करने और उसे बढ़ाने का मौका दिया है। डिजिटल मार्केटिंग, ई-कॉमर्स, एफिलिएट मार्केटिंग और ऑनलाइन कोर्स बेचने जैसे अवसर अब आम हो गए हैं।

सामाजिक मीडिया के नकारात्मक प्रभाव :-

जहाँ सामाजिक मीडिया ने आधुनिक समाज, विशेषकर युवा पीढ़ी, को अनेक सुविधाएँ और अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसके कई दुष्प्रभाव भी सामने आए हैं। यह दुष्प्रभाव केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक ढांचे को भी प्रभावित करते हैं। नियंत्रित और संतुलित उपयोग से ये प्रभाव कम हो सकते हैं, लेकिन अनियंत्रित और अत्यधिक उपयोग से ये गंभीर समस्याओं का रूप ले सकते हैं।

सोशल मीडिया का सबसे बड़ा नकारात्मक असर युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर देखा गया है। अत्यधिक समय तक सोशल मीडिया का उपयोग करने से युवाओं में चिंता, तनाव और अवसाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है। "लाइक्स" और "फॉलोअर्स" पर अत्यधिक निर्भरता से आत्मसम्मान प्रभावित होता है। इंस्टाग्राम और फेसबुक पर दूसरों की "हाइलाइटेड लाइफ" देखकर युवा अक्सर अपने जीवन से असंतुष्ट महसूस करने लगते हैं।

देर रात तक मोबाइल और सोशल मीडिया का उपयोग नींद की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, जिससे शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ता है। सोशल मीडिया की सबसे बड़ी

समस्या इसकी “लत” (Addication) है। अनजाने में घंटों तक फीड स्क्रॉल करना, रील्स देखना या गेम खेलना, युवाओं की उत्पादकता को घटाता है। पढ़ाई और काम के समय में सोशल मीडिया का उपयोग ध्यान भटकाता है। टालमटोल (Procrastination) की प्रवृत्ति बढ़ती है, जिससे लक्ष्यों की प्राप्ति में देरी होती है।

डिजिटल युग में उत्पीड़न का नया रूप “साइबर बुलिंग” है। अपमानजनक संदेश, अफवाहें फैलाना, निजी तस्वीरों का दुरुपयोग आदि घटनाएँ युवाओं में मानसिक आघात पैदा करती हैं। कई मामलों में पीड़ित अवसाद या आत्महत्या तक की ओर बढ़ जाते हैं।

सोशल मीडिया पर जानकारी की गति जितनी तेज है, उसकी सत्यता की गारंटी उतनी ही कम है। अफवाहें, अपुष्ट समाचार और झूठी सूचनाएँ युवाओं की सोच को प्रभावित कर सकती हैं। फेक न्यूज कई बार सामाजिक तनाव, साम्प्रदायिक विवाद और हिंसा का कारण भी बनती है।

युवाओं की निजी जानकारी (फोटो, लोकेशन, संपर्क विवरण) अक्सर सोशल मीडिया पर सार्वजनिक हो जाती है, जिसका दुरुपयोग साइबर अपराधी कर सकते हैं। डेटा चोरी और पहचान की जालसाजी के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। कई बार विज्ञापन कंपनियाँ भी उपयोगकर्ताओं की जानकारी का व्यावसायिक इस्तेमाल करती हैं। आभासी दुनिया में अधिक समय बिताने से युवाओं के वास्तविक जीवन के रिश्तों पर असर पड़ता है। परिवार और मित्रों के साथ समय बिताने की आदत कम हो जाती है। आमने-सामने संवाद कौशल (Face to Face Communication skills) कमजोर होते हैं।

सोशल मीडिया पर विदेशी संस्कृति, फैशन और भाषा के अधिक प्रभाव से कभी-कभी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूरी बढ़ जाती है। युवा अपने देशज रीति-रिवाज, लोककला और परंपराओं में रुचि कम लेने लगते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव बढ़ता है।

लंबे समय तक स्क्रीन के सामने बैठने से आंखों में दर्द, सिरदर्द और गर्दन-कंधे की समस्याएँ बढ़ती हैं। शारीरिक गतिविधियों में कमी से मोटापा और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोशल मीडिया का प्रभाव :-

सामाजिक मीडिया का प्रभाव केवल सतही स्तर पर ही नहीं, बल्कि युवाओं के मस्तिष्क, सोचने के तरीके और भावनात्मक संतुलन तक गहराई से पहुँचता है। मनोविज्ञान के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न संज्ञानात्मक (Cognitive), भावनात्मक (Emotional) और व्यवहारिक (Behavioral) प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। इसका प्रभाव सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि युवा इसे किस प्रकार, कितनी अवधि और किस उद्देश्य से उपयोग कर रहे हैं।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग मस्तिष्क के रिवार्ड सिस्टम (Reward System) को प्रभावित करता है। हर बार जब किसी पोस्ट पर “लाइक” या “कमेंट” मिलता है, तो मस्तिष्क डोपामाइन नामक न्यूरोट्रांसमीटर का स्राव करता है, जो आनंद और संतुष्टि की भावना उत्पन्न करता

है। समय के साथ यह प्रक्रिया आदत से लत में बदल सकती है, जहाँ व्यक्ति बार-बार नोटिफिकेशन चेक करने और प्रतिक्रिया देखने के लिए मजबूर हो जाता है। यह लत पढ़ाई, काम और नींद के समय को प्रभावित करती है, जिससे जीवन की गुणवत्ता गिरती है।

1954 में मनोवैज्ञानिक लियोन फेस्टिंगर द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत बताता है कि लोग अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों का आकलन दूसरों से तुलना करके करते हैं। सोशल मीडिया पर लोग अक्सर अपने जीवन के केवल सकारात्मक और आकर्षक पहलुओं को ही प्रदर्शित करते हैं, जिसे देखकर युवा अपने जीवन को कमतर महसूस करने लगते हैं। यह "ऊर्ध्व तुलना" (Upward Comparison) आत्म-सम्मान में कमी, ईर्ष्या और अवसाद को जन्म दे सकती है।

FOMO एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति को यह डर या चिंता रहती है कि कहीं वह किसी महत्वपूर्ण घटना, अवसर या अनुभव से वंचित न रह जाए। सोशल मीडिया पर दोस्तों की यात्राएँ, पार्टियाँ और उपलब्धियाँ देखकर यह भावना और प्रबल होती है। इससे व्यक्ति बार-बार सोशल मीडिया चेक करने लगता है, भले ही उसे कोई नई जानकारी न मिले।

मनोवैज्ञानिक गोफमैन के "Self-Presentation Theory" के अनुसार, लोग सार्वजनिक मंच पर अपने व्यक्तित्व का वह रूप दिखाते हैं जो वे दूसरों को दिखाना चाहते हैं। युवा अपनी तस्वीरों, स्टेटस और प्रोफाइल विवरण के माध्यम से एक विशेष छवि बनाने की कोशिश करते हैं, जो कभी-कभी वास्तविक व्यक्तित्व से भिन्न होती है। सकारात्मक टिप्पणियाँ और प्रतिक्रिया मिलने पर मूड अच्छा हो जाता है, जबकि नकारात्मक टिप्पणियाँ या अनदेखी होने पर मनोभाव गिर जाते हैं। यह भावनात्मक उतार-चढ़ाव आत्म-नियंत्रण और मानसिक संतुलन को प्रभावित कर सकता है। ऑनलाइन अपमान, धमकी या मजाक उड़ाना युवाओं में सामाजिक भय, अवसाद और आत्मविश्वास की कमी पैदा करता है। पीड़ित अक्सर समाज से कटने लगते हैं और अकेलेपन का अनुभव करते हैं।

मनोवैज्ञानिक शोध बताते हैं कि समय-समय पर सोशल मीडिया से दूरी बनाना (Digital Detox) मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। यह तनाव कम करता है, नींद की गुणवत्ता सुधारता है और वास्तविक जीवन के संबंधों को मजबूत करता है।

निष्कर्ष:-

आधुनिक युग में सामाजिक मीडिया युवा पीढ़ी के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। यह केवल संचार और मनोरंजन का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि शिक्षा, कैरियर, व्यापार, सामाजिक जागरूकता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त उपकरण बन चुका है। इसने युवा वर्ग को वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बनाने, विचार व्यक्त करने और अवसर प्राप्त करने के अनगिनत मार्ग प्रदान किए हैं। सोशल मीडिया का प्रभाव दोधारी तलवार के समान है - एक ओर यह ज्ञान, अवसर, रचनात्मकता और सामाजिक जुड़ाव को प्रोत्साहित करता है तो दूसरी ओर यह मानसिक तनाव, समय की बर्बादी, साइबर अपराध, गोपनीयता हनन और

सामाजिक संबंधों में दूरी जैसी समस्याओं को जन्म देता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो सोशल मीडिया युवाओं के आत्म-छवि निर्माण, सामाजिक तुलना और भावनात्मक स्थिरता पर गहरा असर डालता है। वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह पारिवारिक संवाद, भाषा शैली, सांस्कृतिक मूल्यों और जीवनशैली में बदलाव लाने का कारक है। आर्थिक दृष्टिकोण से यह नए रोजगार, उद्यमिता और डिजिटल मार्केटिंग के अवसर प्रदान करता है, लेकिन उपभोक्तावाद और असमानता जैसी चुनौतियाँ भी लाता है।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि सोशल मीडिया अपने आप में न तो पूरी तरह लाभकारी है और न ही पूरी तरह हानिकारक। इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि इसे किस उद्देश्य, कितनी अवधि और कितनी जिम्मेदारी के साथ उपयोग किया जाता है। यदि युवा पीढ़ी इसका उपयोग संतुलित और सकारात्मक दृष्टिकोण से करे, तो यह उनके व्यक्तिगत विकास और सामाजिक प्रगति दोनों के लिए वरदान साबित हो सकता है। अंततः, सोशल मीडिया एक शक्तिशाली साधन है, जो सही दिशा और संयमित उपयोग के साथ युवा पीढ़ी को वैश्विक नेतृत्व, नवाचार और सामाजिक परिवर्तन का वाहक बना सकता है। लेकिन यदि इसका दुरुपयोग या अति-निर्भरता हो, तो यह उनकी क्षमता, रचनात्मकता और मानसिक संतुलन को क्षति पहुँचा सकता है। इसलिए, आज के युवाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वे सोशल मीडिया को साधन के रूप में अपनाएँ, साध्य के रूप में नहीं।

संदर्भ :-

जैन, रमेश. (2022). *सोशल मीडिया के आर्थिक अवसर और चुनौतियाँ.* भारतीय आर्थिक पत्रिका, 28(4), 201–215.

पांडे, सुरेश. (2021). *साइबर सुरक्षा और गोपनीयता संरक्षण.* लखनऊ: भारतीय तकनीकी प्रकाशन.

प्रसाद, विजय, एवं चौधरी, कैलाश. (2020). *सोशल मीडिया और युवा: व्यवहारिक विश्लेषण.* मीडिया अध्ययन पत्रिका, 12(3), 55–70.

मिश्र, अनिल. (2020). *सोशल मीडिया और सांस्कृतिक परिवर्तन: भारत के संदर्भ में.* समाजशास्त्रीय विमर्श, 15(1), 87–101.

शर्मा, राजेश कुमार. (2021). *डिजिटल युग में सोशल मीडिया और युवा.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

सिंह, प्रदीप, एवं वर्मा, सुनीता. (2019). *सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव: एक अध्ययन.* भारतीय मनोविज्ञान समीक्षा, 45(2), 112–124

मारवाड़ (जोधपुर रियासत) में राठौड़ों का शासन और उनका प्रशासनिक ढांचा

गौरव पाण्डेय*

gauravsujh@gmail.com

सारांश:

मारवाड़ में राठौड़ों का शासन राजस्थान के इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय है, जिसमें वीरता, संगठन, सांस्कृतिक संरक्षण और प्रशासनिक दक्षता का अद्वितीय संगम दिखाई देता है। 13वीं शताब्दी में कन्नौज से आए राठौड़ों ने राव सीहा के नेतृत्व में मंडोर को केंद्र बनाकर अपने शासन की नींव रखी, जिसे बाद में 1459 ईस्वी में राव जोधा ने जोधपुर में स्थापित कर और सुदृढ़ किया। राठौड़ शासन का प्रशासनिक ढांचा पारंपरिक राजपूत सामंती व्यवस्था और स्थानीय रीति-रिवाजों पर आधारित था, जिसमें केन्द्रीय स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक जिम्मेदारियों का स्पष्ट वितरण था। राज्य के शिखर पर महाराजा सर्वोच्च सत्ता के रूप में विराजमान थे, जिनके अधीन दीवान, मंत्रिपरिषद, सैन्य अधिकारी और अन्य पदाधिकारी कार्य करते थे। जोधपुर रियासत का सामाजिक स्वरूप विविधतापूर्ण और बहुधार्मिक था। राजपूत सत्ता और सैन्य शक्ति के केंद्र में थे, जबकि ब्राह्मण धार्मिक, शैक्षणिक और परामर्श कार्यों में सक्रिय थे। व्यापारी वर्ग ने व्यापार और वाणिज्य को सशक्त बनाया, कृषक समुदाय ने कृषि उत्पादन को स्थिर रखा, और रैबारी, विश्नोई, मांगणियार, लंगा जैसे समुदायों ने पशुपालन, लोकसंगीत और सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध किया। आर्थिक दृष्टि से रियासत का आधार कृषि और पशुपालन था। सीमित वर्षा के बावजूद कुएँ, तालाब और बावड़ियों की पारंपरिक सिंचाई प्रणाली ने उत्पादन को संभव बनाया। बाजरा, ज्वार, गेहूँ, मूंग, चना, सरसों और कपास प्रमुख फसलें थीं। मारवाड़ी घोड़े, ऊँट और भेड़-बकरी पालन से पशुपालन अर्थव्यवस्था का अभिन्न हिस्सा बना। सैन्य दृष्टि से राठौड़ सेना उनकी पहचान और शक्ति का मूल आधार थी। घुड़सवार दस्ते युद्ध में तेज आक्रमण और मरुस्थलीय परिस्थितियों में लंबी दूरी तय करने में निपुण थे। पैदल सेना और किलों की मजबूत व्यवस्था ने सुरक्षा सुनिश्चित की। मुगल काल में तोपखाना और आधुनिक हथियार शामिल हुए, जबकि ब्रिटिश काल में जोधपुर लांसर्स जैसी रेजीमेंटों ने प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध में विदेशों में मोर्चे संभाले। समग्र रूप से राठौड़ शासन ने कठिन प्राकृतिक परिस्थितियों और बाहरी राजनीतिक दबावों के बावजूद एक स्थायी और प्रभावशाली राज्य संरचना विकसित की। संगठित प्रशासन, सामाजिक समन्वय, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सैन्य क्षमता के संतुलन ने जोधपुर रियासत को न केवल अपने समय में प्रतिष्ठा दिलाई, बल्कि एक ऐसी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत भी दी जो आज भी जीवित है। यह इतिहास इस बात का प्रमाण है कि दूरदर्शी नेतृत्व और सामूहिक प्रयास किसी भी राज्य को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सशक्त और समृद्ध बना सकते हैं।

मुख्य शब्द :

राठौड़ शासन, जोधपुर रियासत, प्रशासनिक ढांचा, सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना, सैन्य व्यवस्था

***सहायक आचार्य (गेस्ट फैकल्टी) एम. बी. एम. राजकीय कन्या महाविद्यालय, सुजानगढ़, चुरू (राज.)**

प्रस्तावना :-

मारवाड़, जो आज के राजस्थान के पश्चिमी भाग में विस्तृत है, भारतीय इतिहास में अपनी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान के लिए जाना जाता है। यह क्षेत्र शुष्क जलवायु, सीमित जलस्रोत और विशाल थार मरुस्थल से घिरा हुआ होने के बावजूद न केवल एक स्थायी मानव बस्ती का केंद्र रहा है, बल्कि यहाँ ने वीरता, त्याग और संगठन की मिसाल भी कायम की है। इस क्षेत्र का राजनीतिक और प्रशासनिक इतिहास विशेष रूप से राठौड़ वंश के शासन से गहराई से जुड़ा हुआ है। राठौड़, जो मूलतः गहड़वाल वंश के कन्नौज से संबंधित थे, 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजनीतिक अस्थिरता और तुर्क आक्रमणों के कारण पश्चिम की ओर प्रवासित हुए। इस प्रव्रजन के दौरान राव सीहा और उनके उत्तराधिकारियों ने मारवाड़ में अपने अधिकार स्थापित किए और 1226 ईस्वी में मंडोर को अपनी राजधानी बनाकर राठौड़ प्रभुत्व की नींव रखी।

भूगोल ने मारवाड़ के राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे को गहरे रूप में प्रभावित किया। यह क्षेत्र अरावली पर्वत श्रृंखला के पश्चिमी हिस्से में स्थित है, जहाँ वर्षा की मात्रा कम और तापमान अत्यधिक होता है। जलस्रोतों की कमी और कृषि योग्य भूमि की सीमितता ने यहाँ के शासकों को एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था विकसित करने के लिए प्रेरित किया, जो न केवल प्राकृतिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन कर सके, बल्कि सीमावर्ती और सामरिक दृष्टि से संवेदनशील इस भू-भाग को सुरक्षित भी रख सके। राठौड़ों ने इस चुनौतीपूर्ण परिदृश्य को अवसर में बदला और मारवाड़ को एक संगठित और शक्तिशाली रियासत के रूप में विकसित किया।

राठौड़ शासन की सबसे बड़ी विशेषता उसका सामंती ढांचा था, जो निष्ठा, व्यक्तिगत शौर्य और परस्पर सहयोग पर आधारित था। महाराजा सर्वोच्च सत्ता के रूप में न केवल राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय लेते थे, बल्कि वे धार्मिक संरक्षक और राज्य के सर्वोच्च सेनापति भी होते थे। उनके अधीन दीवान, मंत्रिपरिषद, सैन्य अधिकारी, किलेदार और स्थानीय सामंत (ठाकुर) मिलकर शासन का संचालन करते थे। यह बहुस्तरीय प्रशासनिक ढांचा समय के साथ बदलता रहा, प्रारंभ में यह पारंपरिक राजपूत रीति-रिवाजों और लोक-व्यवहार पर आधारित था, लेकिन मुगल और बाद में ब्रिटिश प्रभाव ने इसमें औपचारिक संस्थाएं, लिखित कानून और आधुनिक प्रशासनिक प्रक्रियाएं भी जोड़ दीं।

जोधपुर, जो 1459 ईस्वी में राव जोधा द्वारा स्थापित की गई राजधानी थी, राठौड़ शासन का राजनीतिक और सांस्कृतिक केंद्र बन गया। यहाँ से न केवल प्रशासनिक आदेश प्रसारित होते थे, बल्कि यह रियासत की आर्थिक गतिविधियों, सैन्य अभियानों और सांस्कृतिक संरक्षण का भी केंद्र था। मुगल काल में जोधपुर के शासकों ने एक ओर दिल्ली दरबार में उच्च पद प्राप्त किए, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने क्षेत्र में पर्याप्त स्वायत्तता बनाए रखी। ब्रिटिश काल में 1818 की संधि के बाद मारवाड़ आंतरिक रूप से स्वायत्त

रियासत बना रहा, लेकिन विदेश नीति और रक्षा का नियंत्रण अंग्रेजों के पास चला गया। इस काल में शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे में कुछ उल्लेखनीय सुधार भी हुए।

इस शोध-पत्र में हम विस्तार से अध्ययन करेंगे कि राठौड़ों ने मारवाड़ में किस प्रकार का प्रशासनिक ढांचा स्थापित किया, उसमें समय के साथ क्या परिवर्तन आए, और यह किस प्रकार जोधपुर रियासत के सामाजिक, आर्थिक और सैन्य स्वरूप के साथ जुड़कर एक स्थायी राजनीतिक इकाई का निर्माण करता रहा। यह अध्ययन न केवल अतीत की समझ को गहरा करेगा, बल्कि यह भी दिखाएगा कि किस प्रकार भूगोल, संस्कृति और राजनीति मिलकर एक अद्वितीय ऐतिहासिक अनुभव का निर्माण करते हैं।

राठौड़ शासन का प्रशासनिक ढांचा :-

मारवाड़ में राठौड़ों का शासन एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक ढांचे पर आधारित था, जो पारंपरिक राजपूत सामंती व्यवस्था और स्थानीय रीति-रिवाजों के साथ-साथ समय के साथ आए बाहरी प्रभावों का मिश्रण था। राज्य के शिखर पर महाराजा होते थे, जिनके हाथों में सर्वोच्च सत्ता निहित थी। वे न केवल राजनीतिक और सैन्य नेता थे, बल्कि न्याय के अंतिम निर्णायक और धार्मिक संरक्षक भी माने जाते थे। महाराजा का व्यक्तित्व और नेतृत्व क्षमता पूरे प्रशासन की दिशा तय करता था। सक्षम और दूरदर्शी महाराजाओं के समय में राज्य का विस्तार और आंतरिक स्थिरता अधिक होती थी, जबकि कमजोर नेतृत्व के दौर में सामंती विद्रोह और बाहरी दबाव बढ़ जाते थे। महाराजा के दाहिने हाथ के रूप में दीवान का पद अत्यंत महत्वपूर्ण था। दीवान का चुनाव प्रायः किसी विद्वान, अनुभवी और ईमानदार व्यक्ति में से किया जाता था, जो ब्राह्मण, कायस्थ या किसी शिक्षित व्यापारी वर्ग से हो सकता था। दीवान राज्य के वित्त, कर वसूली, राजस्व प्रबंधन, कूटनीति और प्रशासनिक सुधारों के लिए जिम्मेदार होता था, और संकट की घड़ी में महाराजा की अनुपस्थिति में शासन संचालन भी उसके हाथ में आ जाता था।

महाराजा और दीवान की सहायता के लिए मंत्रिपरिषद होती थी, जिसमें प्रमुख सामंत, ठाकुर, वित्त अधिकारी, सैन्य कमांडर और धार्मिक सलाहकार शामिल होते थे। ये परिषद नीतिगत निर्णयों, सैन्य योजनाओं, आर्थिक सुधारों और न्यायिक मामलों में परामर्श देती थी। राज्य का प्रशासन केवल राजधानी तक सीमित नहीं था, बल्कि पूरे मारवाड़ को परगनों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक परगना का संचालन हाकिम करता था, जो न्याय, कानून-व्यवस्था और कर वसूली का प्रभारी होता था। परगना के किलों की देखभाल और सैनिकों की तैनाती का कार्य किलेदार के हाथ में होता था। भूमि मापन, कर निर्धारण और अभिलेख रखने का कार्य अमीन या पटवारी करते थे, जबकि कस्बों में कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी।

ग्राम स्तर पर प्रशासन की बागडोर पटेल और चौधरी के हाथ में होती थी। पटेल गाँव का मुखिया होता था, जो भूमि बंटवारा, कर वसूली और स्थानीय विवादों के निपटारे में भूमिका निभाता था, जबकि

चौधरी उसका सहायक होता था। गाँवों में पंचायतें भी होती थीं, जिनमें बुजुर्ग और सम्मानित व्यक्ति शामिल होते थे और जो स्थानीय रीति-रिवाजों और सामाजिक मान्यताओं के अनुसार फैसले सुनाते थे। यह पंचायत व्यवस्था न्याय और सामाजिक सामंजस्य बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण साधन थी। प्रशासनिक ढांचे में धार्मिक संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान था। बड़े मंदिरों और मठों को जागीरें दी जाती थीं, जिनका प्रबंधन पुजारियों और महंतों के हाथ में होता था। धार्मिक पदाधिकारी जैसे राजपंडित और राजगुरु न केवल धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करते थे, बल्कि राजा को नीतिगत और नैतिक परामर्श भी देते थे।

कर व्यवस्था प्रशासनिक ढांचे का आर्थिक आधार थी। भूमि उपज पर लगान सबसे महत्वपूर्ण कर था, जिसे नकद या अन्न के रूप में वसूला जाता था। इसके अलावा व्यापारिक कर (चकला), पशुपालन पर चराई कर, और विशेष अवसरों पर अतिरिक्त कर (अबवाब) लगाए जाते थे। कर वसूली की जिम्मेदारी ग्राम स्तर पर पटवारी और चौधरी की होती थी, जबकि परगना स्तर पर हाकिम और खजांची इसे कोषागार तक पहुँचाते थे। भ्रष्टाचार या कर चोरी के मामलों में सख्त दंड दिए जाते थे, जिससे व्यवस्था में अनुशासन बना रहता था।

प्रशासन में महिलाओं की भूमिकाः

राजपूत समाज में महिलाओं की भूमिका मुख्यतः घरेलू और सांस्कृतिक क्षेत्र तक सीमित मानी जाती थी, लेकिन मारवाड़ में राठौड़ शासन के दौरान कुछ रानियाँ और राजघराने की महिलाएँ प्रशासनिक निर्णयों और राज्य संचालन में भी प्रभाव डालती थीं।

महाराजा की माता या वरिष्ठ रानी संकट के समय परामर्श देती थीं। विशेषकर उत्तराधिकार विवाद या राजनीतिक संकट में उनका मत निर्णायक हो सकता था। रानियाँ महल के भीतर की प्रशासनिक व्यवस्था, सेवकों का प्रबंधन, और धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन देखती थीं। रानियों ने साहित्य, संगीत और चित्रकला को संरक्षण देकर अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की सांस्कृतिक राजनीति को प्रभावित किया।

धार्मिक संस्थाओं और परंपराओं का प्रशासनिक प्रभावः

राठौड़ शासन में धर्म केवल सामाजिक जीवन का हिस्सा नहीं था, बल्कि प्रशासनिक संरचना पर भी उसका सीधा प्रभाव था। महाराजा स्वयं को देवी-देवताओं का प्रतिनिधि मानते थे और राज्य के धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय भाग लेते थे। बड़े मंदिरों और मठों को जागीर दी जाती थी, जिसका प्रबंधन पुजारियों और महंतों के हाथ में होता था। मंदिर और धार्मिक संस्थाओं की भूमि पर कर में छूट या पूर्ण माफी दी जाती थी। दशहरा, होली, नागपंचमी जैसे त्योहार राजकीय स्तर पर आयोजित होते थे, जिनमें प्रशासनिक अधिकारी भी शामिल होते थे। राज्य में राजपंडित और राजगुरु का पद होता था, जो न केवल धार्मिक अनुष्ठान कराते थे, बल्कि राजा को नीतिगत और नैतिक परामर्श भी देते थे।

इस प्रकार राठौड़ शासन का प्रशासनिक ढांचा एक बहुस्तरीय प्रणाली थी, जिसमें केंद्र से लेकर गाँव तक सत्ता और जिम्मेदारियाँ विभाजित थीं। यह ढांचा न केवल राजनीतिक नियंत्रण का साधन था, बल्कि सामाजिक स्थिरता, आर्थिक प्रबंधन और सैन्य संगठन का भी आधार था। इसकी सफलता का रहस्य पारंपरिक निष्ठा, सामंती सहयोग और समय के साथ बदलाव स्वीकार करने की क्षमता में निहित था।

राठौड़ों का प्रशासनिक ढांचा समय के साथ बदलता भी रहा। मुगल काल में भूमि मापन और कर निर्धारण की मुगल पद्धति अपनाई गई, महाराजाओं को मनसबदार और सुबेदार की उपाधि मिली, और सेना को मुगल अभियानों में भाग लेने के लिए भेजा जाने लगा। ब्रिटिश काल में 1818 की संधि के बाद आंतरिक प्रशासन रियासत के हाथ में रहा, लेकिन विदेश नीति और रक्षा का नियंत्रण अंग्रेजों के पास चला गया। इस दौरान शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण और न्यायपालिका में औपचारिक सुधार हुए।

जोधपुर रियासत का सामाजिक स्वरूप :-

जोधपुर रियासत का सामाजिक स्वरूप विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि से परिपूर्ण था, जिसमें जातीय, धार्मिक और पेशागत आधार पर कई समुदाय सहअस्तित्व में रहते थे। रियासत के शीर्ष पर राजपूत वर्ग था, जिसमें राठौड़ सत्ता और सैन्य शक्ति के केंद्र में थे। यह वर्ग न केवल राजनीतिक नेतृत्व करता था, बल्कि समाज में वीरता, सम्मान और मर्यादा की परंपराओं का संरक्षक भी था। इनके अधीन सामंत और ठाकुर अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासन और सैन्य संगठन का संचालन करते थे तथा राज्य की स्थिरता में योगदान देते थे। इनके नीचे ब्राह्मण वर्ग था, जो धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा-पाठ, ज्योतिष, शिक्षा और शास्त्रीय अध्ययन में संलग्न रहता था। ब्राह्मण केवल धार्मिक भूमिका तक सीमित नहीं थे, बल्कि दरबार में राजपंडित और राजगुरु के रूप में नीति-निर्माण में भी परामर्श देते थे। व्यापारी और वैश्य समुदाय रियासत के आर्थिक जीवन का आधार थे, जो व्यापार, वाणिज्य और धन-संचय में निपुण थे। उनके माध्यम से आंतरिक और बाहरी व्यापार फला-फूला और रियासत को वित्तीय स्थिरता मिली।

कृषक वर्ग, जिसमें जाट और अन्य खेतिहर समुदाय शामिल थे, कृषि उत्पादन की रीढ़ थे। ये लोग भूमि की जोताई, सिंचाई और फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इनके अलावा पशुपालक समुदाय जैसे रैबारी और विश्नोई भी सामाजिक ढांचे का अभिन्न हिस्सा थे, जिनका योगदान ऊँट, घोड़े, भेड़ और बकरियों के पालन में था। विश्नोई समुदाय विशेष रूप से अपने प्रकृति और वन्यजीव संरक्षण के सिद्धांतों के लिए प्रसिद्ध था, जो आज भी प्रासंगिक हैं। इसी प्रकार, मांगणियार और लंगा जैसे लोकगायक समुदाय अपनी गायकी और वादन कला से दरबार और आमजन दोनों को मनोरंजन और सांस्कृतिक गौरव प्रदान करते थे। इनके गीतों में वीरता, प्रेम, भक्ति और ऐतिहासिक घटनाओं का जीवंत चित्रण मिलता था। कालबेलिया, भील और अन्य जनजातीय समूह अपने पारंपरिक नृत्य, हस्तशिल्प और जीवन शैली के माध्यम से समाज में विशिष्ट स्थान रखते थे।

धार्मिक दृष्टि से जोधपुर रियासत बहुधार्मिक सहअस्तित्व का उदाहरण थी। अधिकांश जनसंख्या हिंदू थी, जिसमें वैष्णव, शैव और शक्ति उपासक प्रमुख थे। मुस्लिम समुदाय नगरीय क्षेत्रों और कारीगर वर्ग में प्रभावशाली था तथा सूफी परंपरा के अनुयायी समाज में धार्मिक सौहार्द को बढ़ावा देते थे। जैन समुदाय, विशेष रूप से व्यापारी वर्ग में, अपनी आर्थिक दक्षता और धार्मिक गतिविधियों के लिए जाना जाता था, जिनके द्वारा रियासत में कई भव्य जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। धार्मिक सहिष्णुता राठौड़ शासन की नीति का हिस्सा थी, जिसके अंतर्गत मंदिरों, मस्जिदों, दरगाहों और मठों को संरक्षण, अनुदान और जागीरें दी जाती थीं।

शिक्षा का स्वरूप प्रारंभ में परंपरागत था। गुरुकुलों और मंदिर-आधारित पाठशालाओं में संस्कृत, व्याकरण, गणित, ज्योतिष और धर्मशास्त्र पढ़ाए जाते थे। मुगल काल में फारसी भाषा और साहित्य का प्रभाव बढ़ा, जिससे प्रशासनिक और सांस्कृतिक जीवन में नई दिशा मिली। ब्रिटिश काल में शिक्षा प्रणाली में सुधार हुआ, आधुनिक विद्यालय और कॉलेज स्थापित हुए और विज्ञान, अंग्रेजी तथा आधुनिक विषयों का अध्ययन शुरू हुआ। महिला शिक्षा लंबे समय तक सीमित रही, लेकिन 20वीं सदी के प्रारंभ में सामाजिक सुधार आंदोलनों के कारण इसमें कुछ प्रगति हुई।

कला और संस्कृति के क्षेत्र में जोधपुर रियासत अत्यंत समृद्ध थी। स्थापत्य कला में मेहरानगढ़ किला, जसवंत थड़ा, उम्मेद भवन, हवेलियाँ और बावड़ियाँ उल्लेखनीय हैं। लाल बलुआ पत्थर की नक्काशी और स्थापत्य में राजपूत और मुगल शैली का अनूठा मिश्रण दिखाई देता है। संगीत और नृत्य में मांगणियार और लंगा गायक, घूमर, चरी और कालबेलिया नृत्य विशेष प्रसिद्ध थे। साहित्य में डिंगल और पिंगल काव्य परंपरा विकसित हुई, जिसमें वीरगाथाएँ, ऐतिहासिक आख्यान और भक्ति काव्य प्रमुख थे।

इस प्रकार जोधपुर रियासत का सामाजिक स्वरूप न केवल बहुधार्मिक और बहुजातीय था, बल्कि यह एक समन्वित और सजीव सांस्कृतिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता था, जिसने इसे राजस्थान और भारत के सामाजिक इतिहास में विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

जोधपुर रियासत का आर्थिक स्वरूप :-

जोधपुर रियासत की आर्थिक संरचना उसके भौगोलिक परिदृश्य, प्राकृतिक संसाधनों और सामाजिक संगठन से गहराई से जुड़ी हुई थी। थार मरुस्थल की कठोर जलवायु और सीमित वर्षा ने यहाँ की अर्थव्यवस्था को विशेष रूप से कृषि और पशुपालन पर केंद्रित कर दिया था। खेती योग्य भूमि अपेक्षाकृत कम थी और कृषि उत्पादन मुख्यतः कुओं, तालाबों और बावड़ियों पर आधारित सिंचाई प्रणाली से होता था। बाजरा, ज्वार, गेहूँ, मूंग, चना, सरसों और कपास प्रमुख फसलें थीं, जो स्थानीय उपभोग के साथ-साथ व्यापार के लिए भी उगाई जाती थीं। वर्षा के असमान वितरण के कारण कृषि पर जोखिम अधिक था, इसलिए किसानों ने फसलों के विविधीकरण और पशुपालन को आय के अतिरिक्त स्रोत के रूप में अपनाया।

पशुपालन इस रियासत की अर्थव्यवस्था का एक स्थायी और विश्वसनीय आधार था। मारवाड़ी नस्ल के घोड़े अपनी सहनशक्ति और गति के लिए प्रसिद्ध थे और न केवल स्थानीय सैन्य शक्ति का आधार थे बल्कि बाहरी बाजारों में भी इनकी मांग थी। ऊँट परिवहन और लंबी दूरी की यात्रा के लिए अनिवार्य थे, जबकि भेड़ और बकरियाँ ऊन, दूध और मांस प्रदान करती थीं। रैबारी, विश्नोई और अन्य पशुपालक समुदाय इस क्षेत्र में पशुधन पालन की परंपराओं को जीवित रखते थे और इनके कारण ऊन उद्योग और संबंधित हस्तशिल्प का विकास हुआ।

व्यापार और वाणिज्य ने जोधपुर रियासत को केवल एक कृषि-प्रधान राज्य से आगे बढ़ाकर एक व्यापारिक केंद्र भी बना दिया था। आंतरिक व्यापार हाट, बाजारों और वार्षिक मेलों में संचालित होता था, जहाँ अनाज, नमक, ऊन, कपड़ा, मसाले और धातु के सामान का लेन-देन होता था। बाहरी व्यापार में गुजरात, सिंध, दिल्ली और मध्य भारत के साथ व्यापक संपर्क था। ऊन, अफीम, कपास और मसालों का निर्यात किया जाता था, जबकि मसाले, रेशम, हथियार और आभूषण आयात किए जाते थे। जोधपुर का भौगोलिक स्थान इसे उत्तर-पश्चिमी भारत के व्यापारिक मार्गों पर एक महत्वपूर्ण पड़ाव बनाता था, जिससे व्यापार को सुरक्षा और प्रोत्साहन दोनों मिले।

हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग इस अर्थव्यवस्था का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू थे। मारवाड़ी ऊन से बनी कालीन और दरियाँ, लाल बलुआ पत्थर की नक्काशी, सोने-चांदी के आभूषण, धातु के बर्तन, और शस्त्र निर्माण स्थानीय कारीगरों की कुशलता को दर्शाते थे। ये उत्पाद न केवल स्थानीय मांग को पूरा करते थे बल्कि बाहरी बाजारों में भी लोकप्रिय थे। शाही संरक्षण के तहत कारीगरों और शिल्पकारों को कर में छूट, जागीर या अन्य प्रोत्साहन दिए जाते थे, जिससे शिल्प परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रही।

आर्थिक संरचना में कर व्यवस्था का विशेष स्थान था। भूमि कर या लगान राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था, जिसे नकद या अन्न दोनों रूपों में वसूला जाता था। व्यापारिक कर (चकला), पशुपालन पर चराई कर, और विशेष अवसरों पर लगाए जाने वाले अबवाब भी राजस्व के महत्वपूर्ण साधन थे। कर वसूली ग्राम स्तर पर पटवारी और चौधरी द्वारा की जाती थी और परगना स्तर पर हाकिम की देखरेख में कोषागार तक पहुँचाई जाती थी। कर संग्रह में पारदर्शिता और अनुशासन बनाए रखने के लिए कठोर नियम लागू थे।

अकाल और सूखा इस रियासत की अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती थे। फसल नष्ट होने पर खाद्य संकट और राजस्व में कमी दोनों का सामना करना पड़ता था। ऐसे समय में शाही भंडार से राहत सामग्री वितरण, कर में छूट, और सार्वजनिक निर्माण कार्यों के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराने जैसी नीतियाँ अपनाई जाती थीं। ब्रिटिश काल में कुछ आधुनिक सुधार हुए, जिनमें रेलवे, टेलीग्राफ और सड़कों का विकास, व्यापारिक संपर्कों को सुदृढ़ करना, और सिंचाई के लिए नए स्रोतों का निर्माण शामिल था।

समग्र रूप से, जोधपुर रियासत की अर्थव्यवस्था कृषि और पशुपालन पर आधारित एक सामंती ढांचे में संगठित थी, जिसमें व्यापार, हस्तशिल्प और कर व्यवस्था का समन्वय था। प्राकृतिक कठिनाइयों के

बावजूद, संसाधनों के कुशल प्रबंधन, सामंती सहयोग, और शाही संरक्षण के कारण यह रियासत आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और स्थिर बनी रही।

जोधपुर रियासत का सैन्य स्वरूप :-

जोधपुर रियासत की सैन्य शक्ति उसकी राजनीतिक स्वतंत्रता, सामंती नियंत्रण और बाहरी प्रभावों में अपनी पहचान बनाए रखने का मूल आधार थी। राठौड़ शासक स्वयं को केवल प्रशासक नहीं, बल्कि योद्धा भी मानते थे और राज्य की सुरक्षा, विस्तार और प्रतिष्ठा के लिए सेना का नेतृत्व व्यक्तिगत रूप से करते थे। सेना का मुख्य बल घुड़सवार दस्ते थे, जिन्हें चिंदर कहा जाता था। मारवाड़ी नस्ल के घोड़े अपनी तीव्र गति, सहनशक्ति और कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में युद्ध के अनुकूलता के लिए प्रसिद्ध थे। ये घोड़े न केवल स्थानीय युद्ध में बल्कि बाहर के अभियानों में भी राठौड़ सेना की पहचान बने। पैदल सेना किलों और सीमाई चौकियों की सुरक्षा करती थी और आवश्यकतानुसार बड़े युद्धों में भी शामिल होती थी। मुगल काल में तोपखाने और बारूद आधारित हथियारों का प्रयोग शुरू हुआ, जिससे किलेबंदी और आक्रामक रणनीतियों दोनों में बदलाव आया। ब्रिटिश काल में फील्ड गन, राइफल और मशीनगन जैसी आधुनिक हथियार प्रणाली सेना का हिस्सा बनी, जिससे उसकी मारक क्षमता और अनुशासन में वृद्धि हुई।

सैन्य संगठन में महाराजा सर्वोच्च सेनापति होते थे, जो युद्ध योजनाओं, रणनीतियों और सैनिकों की तैनाती के निर्णय लेते थे। उनके अधीन सदर फौजदार होता था, जो सेना का प्रशासनिक प्रमुख था और सैनिकों की भर्ती, प्रशिक्षण तथा अनुशासन का जिम्मेदार होता था। किलेदार किलों के प्रभारी होते थे और वे सुरक्षा, रसद प्रबंधन तथा हथियार भंडारण की देखरेख करते थे। सामंती व्यवस्था के अंतर्गत ठाकुर और सरदार अपने-अपने क्षेत्रों से निश्चित संख्या में सैनिक और घोड़े उपलब्ध कराते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर युद्ध में भाग लेते थे। सैनिकों की सेवा के बदले उन्हें भूमि, कर छूट और अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं, जिससे उनके परिवारों को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा मिलती थी।

सैनिक प्रशिक्षण में घुड़सवारी, तलवारबाजी, भालाफेंक, तीरंदाजी और बाद में बंदूक के उपयोग पर जोर दिया जाता था। मरुस्थल की कठिन परिस्थितियों में लंबी दूरी तय करना और न्यूनतम संसाधनों में जीवित रहना राठौड़ सेना की विशेषता थी। युद्धनीति में तेज आक्रमण, त्वरित पीछे हटना, दुश्मन को थकाकर निर्णायक प्रहार करना, और भूगोल का सामरिक उपयोग करना शामिल था। किले रियासत की सैन्य और प्रशासनिक संरचना का अभिन्न अंग थे। मेहरानगढ़, नागौर, फलौदी और मंडोर जैसे किलों में मजबूत दीवारें, गहरी खाइयाँ, जलाशय, गोला-बारूद भंडार और सैनिक छावनियाँ होती थीं।

मुगल काल में राठौड़ सेना ने साम्राज्य के कई अभियानों में भाग लेकर अपनी वीरता का लोहा मनवाया। गुजरात, दक्कन और अफगान मोर्चों पर उनकी घुड़सवार टुकड़ियाँ निर्णायक साबित हुईं। औरंगजेब के विरुद्ध अजित सिंह और दुर्गदास राठौड़ के नेतृत्व में चला संघर्ष राठौड़ साहस और रणनीति का उत्कृष्ट

उदाहरण है। ब्रिटिश काल में 1818 की संधि के बाद जोधपुर रियासत की सेना का आधुनिकीकरण किया गया। जोधपुर लांसर्स जैसी विशिष्ट घुड़सवार रेजीमेंटें गठित की गईं, जिन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध में फ्रांस और फिलिस्तीन में, तथा द्वितीय विश्वयुद्ध में अफ्रीका और बर्मा मोर्चों पर अपनी सेवाएँ दीं।

सैन्य शक्ति का सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी गहरा था। सैनिक सेवा केवल युद्धक दायित्व ही नहीं, बल्कि समाज में सम्मान और पहचान का स्रोत थी। युद्ध में वीरगति को प्राप्त योद्धाओं के परिवारों को विशेष भूमि, कर छूट और पेंशन दी जाती थी। यह व्यवस्था न केवल सैन्य निष्ठा को प्रोत्साहित करती थी, बल्कि सेना को सामाजिक संरचना में एक स्थायी और सम्मानित स्थान भी प्रदान करती थी।

इस प्रकार, जोधपुर रियासत की सैन्य शक्ति केवल एक रक्षात्मक तंत्र नहीं थी, बल्कि यह उसकी पहचान, राजनीतिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक थी, जो आज भी उसके किलों, युद्धकथाओं और लोकगीतों में जीवित है।

निष्कर्ष :-

मारवाड़ में राठौड़ों का शासन केवल राजनीतिक प्रभुत्व का परिणाम नहीं था, बल्कि यह एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा था जिसमें साहस, संगठन, सामंती निष्ठा और सांस्कृतिक संरक्षण का अद्वितीय संगम दिखाई देता है। राठौड़ शासकों ने कठिन भौगोलिक परिस्थितियों और सीमित संसाधनों के बावजूद एक स्थायी और प्रभावशाली राज्य व्यवस्था विकसित की, जिसमें प्रशासनिक ढांचा, सामाजिक विविधता, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सैन्य शक्ति एक-दूसरे के पूरक रूप में कार्य करते थे। महाराजा के नेतृत्व में संगठित प्रशासनिक प्रणाली ने केन्द्रीय स्तर से लेकर ग्राम तक जिम्मेदारियों का स्पष्ट वितरण किया, जिससे शासन का संचालन सुचारु और नियंत्रित रहा। परंपरागत सामंती व्यवस्था और स्थानीय रीति-रिवाजों का समन्वय प्रशासन को समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से जोड़े रखता था। सामाजिक स्तर पर यह रियासत बहुधार्मिक और बहुजातीय संरचना का उदाहरण थी, जिसमें विभिन्न समुदाय अपनी-अपनी भूमिका निभाते हुए एक साझा सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करते थे। आर्थिक दृष्टि से कृषि, पशुपालन, व्यापार और हस्तशिल्प पर आधारित व्यवस्था ने राज्य को आत्मनिर्भर बनाया और प्राकृतिक चुनौतियों का सामना करने की क्षमता दी। सैन्य दृष्टि से राठौड़ सेना ने अपनी वीरता और रणनीति से न केवल राज्य की सीमाओं की रक्षा की, बल्कि बाहरी अभियानों में भी अपनी ख्याति स्थापित की। मुगल और ब्रिटिश काल में हुए परिवर्तन इस व्यवस्था में नई तकनीक, संगठन और नीतिगत सुधार लाए, लेकिन राठौड़ों की मूल पहचान और परंपरा इन प्रभावों के बीच भी सुरक्षित रही। निष्कर्षतः जोधपुर रियासत का इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं या युद्धकथाओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक संपूर्ण सभ्यता का चित्र है, जिसमें प्रशासन, समाज, अर्थव्यवस्था और सैन्य क्षमता का संतुलित विकास दिखाई देता है। राठौड़ शासन ने अपने समय में जिस स्थिरता और गौरव का निर्माण किया, वह आज भी मारवाड़ की सांस्कृतिक स्मृतियों, स्थापत्य कला, लोकगीतों और परंपराओं में

जीवंत है। यह विरासत न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि यह इस तथ्य का प्रमाण भी है कि संगठित प्रशासन, सामाजिक समन्वय और दूरदर्शी नेतृत्व किसी भी राज्य को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समृद्ध और सशक्त बना सकता है।

संदर्भ :

अग्रवाल, एम. पी. (2016). *राजस्थान का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (1700-1950).* जयपुरः साहित्य मंदिर प्रकाशन.

चौधरी, एन. (2002). *राजस्थान का इतिहासः संस्कृति और सभ्यता.* जयपुरः राजस्थानी ग्रंथागार.

द्विवेदी, जी. (2015). *जोधपुर का इतिहासः राठौड़ वंश और मारवाड़ का राजनीतिक परिदृश्य.* जोधपुरः सूर्यमुखी प्रकाशन.

नैणसी, मु. (1972). *नैणसी री ख्यात (संपा. के. एस. गुप्ता).* जोधपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान.

पंवार, आर. एस. (1998). *मारवाड़ का प्रशासनिक ढांचाः एक ऐतिहासिक अध्ययन.* जयपुरः राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन.

भटनागर, वी. एस. (1991). *मुगल काल में मारवाड़.* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास.

मालवीय, ए. (2008). *राजस्थान का सामाजिक और आर्थिक इतिहास.* अजमेरः राजस्थानी साहित्य संस्थान.

संस्कृतवाङ्मये कृषि-विज्ञानम्

डॉ. जितेन्द्र कुमार दुबे*

jitendraduve123@gmail.com

सारांशः

भारतीय संस्कृतवाङ्मये कृषि विज्ञानस्य गूढं स्थानं दृश्यते। तैत्तिरीयोपनिषदि अन्नस्य उत्पत्तिप्रक्रिया पृथिव्यां औषधिभ्यः सम्पूर्णा इत्युक्तम्। कृषि कार्यस्य प्रारम्भ ऋग्वेदे एव दृश्यते, यत्र कृषककर्मणः महत्त्वं विस्तरेण प्रतिपादितम्। पाराशरमुनिना लिखिते 'कृषिपाराशरे' कृषकस्य गौरवम्, अन्नस्य अपरिहार्यता च प्रतिपाद्यते। बृहत्संहितायां वाराहमिहिरेण वृष्टिज्ञानं, मेघविज्ञानं, वायविक प्रभावश्च उल्लिखितः। मेघविचारस्य संवर्तकादि भेदाः, वृष्ट्युपयुक्ततायाः विचारः च सूत्ररूपेण प्रतिपादितम्। जैनबौद्धग्रन्थेषु अपि कृषिकर्मणः साधनानि, जलस्रोताः, सिंचनविधयः च वर्णिताः। मनुस्मृति, महाभारत, बाणभट्टकृतग्रन्थेषु यन्त्रोपकरणानि, जलसंरक्षणं, अन्नोत्पादनं च दृष्टव्यं। एतेन स्पष्टं भवति यत् प्राचीनभारते कृषि एकं समग्रं विज्ञानं आसीत्, यत् केवलं अन्नोत्पादनपरं न, अपितु ज्योतिष, पर्यावरण, यन्त्रशास्त्रादिसम्बद्धमपि आसीत्।

मुख्य-शब्दाः

कृषि-विज्ञानम्, वृष्टिविज्ञानम्, कृषिपाराशरः, बृहत्संहिता, सिंचनप्रणाली, वैदिककृषि, जलसंरक्षणम्, मेघविज्ञानम्

सृष्टिकालादेव कृषि:धरायां दृश्यते इत्यस्मिन् विषये तैतरियोपनिषदि सृष्टि प्रकृयायां कथ्यते। यत् 'पृथिव्याम् ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात् पुरुषः (तैत्तिरीय उपनिषद्, 2.1) इत्यस्याशय: भवति यत् पृथिव्याम् ओषधय: जायन्ते, ओषधिभि:अन्न:निष्पन्नो भवति।तथा च अन्नात् पुरूषस्यापि प्रादूर्भाव: भवति । यथा वयं जानी म:यत् अन्न भक्षणेनैव अस्माकं शरीरस्य धातुणां पोषणं तथा च उत्पादनं भवति। एतस्य परिणाम स्वरूपं कस्यापि पुरुषस्य उत्पत्ति:भवति। तर्हि एतेन अयमेव सिद्ध्यति यत् यथा कालात् वयं स्मा।तस्मिन्नेव कालात्कृषि:जीवन्तोस्ति। विश्वस्य सर्वाधिक:प्राचीन: ग्रन्थ: ऋग्वेद: एव अस्ति।इत्यस्मिन् ऋग्वेदे कृषि विषयिणी चर्चा अत्यन्तं विस्तरेण वर्तते।अत्र कृषिकार्यस्य महत्ता आवश्यकता तथा च कृषि कर्म विधिनामुल्लेख: अत्यन्तं विस्तरेण प्राप्यते । प्राचीन काले कृषि कार्यं अत्यन्तं गौरवास्पदं कार्यमासीत्।

***सहायक आचार्य, जोतिष विभाग, श्रीमतीलाडदेवीशर्मापंचोली आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, बरुन्दनी भीलवाडा, राजस्थान. पिन:- 311604**

प्रजापतिं नमस्कृत्य कृषिकर्मविवेचनम् ।

कृषकाणां हितार्थाय ब्रूते ऋषिपराशरः ।।१।।

प्रजापतिं नमस्कृत्य कृषकाणां हितार्थं ऋषि पाराशर: कृषि कर्मस्य विवेचनम् करोति। यथा- कृषि महात्म्य विषये-

चतुर्वेदान्तगो विप्रः शास्त्रवादी विचक्षणः ।
अलक्ष्म्या गृह्यते सोऽपि प्रार्थनालाघवान्वितः ।।२।।
एकया च पुनः कृष्या प्रार्थको नैव जायते ।
कृष्यन्वितो हि लोकेऽस्मिन् भूयादेकश्च भूपतिः ।।३।

एकमात्रं कृषिकार्यमेव कारणमस्ति यस्मात् कारणात् कोपि याचक: नसम्भवति । कोपि जन: कृषिकर्मणा संयुक्तोभूत्वा लोके भूपति: भवितुं शक्नोति ।

सुवर्णरौप्यमाणिक्यवसनैरपि पूरिताः ।
तथापि प्रार्थयन्त्येव कृषकान् भक्ततृष्णया ।।४।।
कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि ।
उपवासस्तथापि स्यादन्नाभावेन देहिनाम् ।।५।।

वाराहमिहिराचार्य प्रणितस्य ज्योतिषशास्त्रस्य बृहत्संहितानामके ग्रन्थे एकविंशतितमे अध्याये वृष्टिविज्ञानविषये बहुस्पष्ट रूपेण उल्लेख: वर्तते ।

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् ।
यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ।।१।।

केनापि भणितं यत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा अनन्तरं गर्भदिव्या:भवन्ति। मतमेतद् बहुनां न वर्तते अत एव गर्गादिमुनिनां मतं अत्र कथ्यते ।

मार्गशिरः सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम् ।

पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ।।

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात् ।

पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ।।

अत्र चान्द्रमानात् (पंचनतेदिनसते) न स्वीकृत्य श्रावणमानात् स्वीकृते सति गर्भधारणकालिकनक्षत्र:प्रसवकाले प्राप्यते ।

पुनः धारित गर्भस्य प्रसव काल:-

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णाद्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तम्प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम् ॥

अस्मिन्नेव क्रमे मुहूर्त चिंतामणि नामक ग्रन्थस्य नक्षत्र प्रकरणे हल कर्षणस्य मुहूर्तं, धान्यच्छेदनमुहूर्तं धान्य एकत्रि करणं कृत्वा गृहे स्थापन्नस्य मूहूर्त: एवं प्रकारेण प्राप्यते।

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेंद्रविभिन्नभेषु
कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे।
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवेज्य-
द्वीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥

वृष्टिहेतुः–

आदित्यरश्मिभिर्पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति
पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः ॥
ह्लादिमृदूदकशिवशक्रभवो मारुतो वियद् विमलम्।
स्निग्धसितवहुलपरिवेषपरिवृतौ हिममयूखार्कौ॥
(बृहत्संहिता)

तेन सुस्पष्टं यत् वृष्टे: सूर्यपीतजलं वा वाष्पै: एव हेतु: वर्तते। परंच अयमेव वृष्टिप्रकृयाया: नियामक: अस्ति, एवं नैव कथितुं शक्यते । ज्योतिष शास्त्रे वृष्टे: ज्ञानार्थं पंचावयवेषु ध्यानं ददाति - वायु: ,मेघ:,ग्रहचार:,भूमि: सद्योवृष्टि: लक्षणं च। प्रामुख्येण पवनस्य त्रयो: भेदा भवन्ति। पावक:, स्थापक:, ज्ञापकश्च। एतेषु पावक नमक: वायु: विभिन्नेषु दिक्सु विकिर्णानां वृष्टियोग्यमेघानां संग्रहणं करोति। तथा च स्थापक नामक वायु: मेघान् वृष्ट्यर्थं प्रेरयति। एवमेव मेघेषु जलाधानकालेपि वायो: अनुकुलत्वमावश्यकं भवति। अन्यथा वाष्पमेघयोर्मध्ये संयोग: न सम्भविष्यति। येन मेघा: शुष्का: स्थास्यन्ति। इत्यस्मिन् विषये आचार्य वाराह मिहिर: लिखति-

पवन इव मेघानांमपि कत्तम: भेदा: गण्यन्ते प्रस्तुते प्रसंगे चत्वारा: भेदा: उल्लेखनीया वर्तन्ते। यथा - संवर्तक: आवर्तक: पुष्कर: द्रोणश्च। एतेषु संवर्तकनामक: मेघ: प्रभुतप्रलयंकारीवृष्टे: क्षमतां विदधाति। द्वितीय: आवतक नामक: मेघ: शुष्क: भवति। एस: वायुवेगाद् इतस्यत: भ्रमति , तृतीय पुस्कर नामक: मेघ: यदा कदा किंचिद वृष्टिं करोति , चतुर्थ: द्रोण संज्ञक: मेघ: संयमितरूपेण कृषियोग्यं वृष्टिं करोति। यथा –

आवर्त्तो निर्जलो मेघः संवर्त्तश्च बहूदकः।
पुष्करो दुष्करजलो द्रोणो सस्यप्रपूरकः ॥

जैन तथा बौधधर्मग्रन्थेष्वपि कृषिकार्याणां वर्णनं वर्तते यथा भूमे: कर्षणम् सिंचनम् बीज वपनं पक्वान्नं कर्तयित्वा तस्य गट्ठरं निर्माय तस्य बन्धनं कृत्वा बृषभ शकटया अन्नक्षेत्रं यावत् प्रेषणम्। बृषभ शकटिका

वर्तमानकालिक (ट्रैक्टर ट्रालीमिव भवति स्म।) बृषभै: कर्षणं भवति स्म। अन्न क्षेत्रे पश्चान्नं तथा च मनुष्यान्नं भिन्नं -भिन्नं क्रियते स्म।बौधग्रन्थेषु सिंचनकार्यस्य त्रिणि साधनानि वर्णितानि सन्ति। तानि साधनानि सन्ति- ठेकुला,रहट, वा चक्रं तथा च चरसा । मौर्य काले बावली, जलाशय: , कूपादि कृत्रिम जल स्रोतानां वर्णनं वर्तते। अस्मिन्नेवकाले कोल्हू यन्त्रशालाया: चर्चा प्राप्यते। मनुस्मृतौ तड़ाग:, पौसर:, कुल्यानां च उल्लेख: वर्तते। एतेनैव माध्यमेन सिंचन क्रियाभवति स्म। महाभारतेपि वृष्टिजलं संरक्षितुं तथा च तस्य जलस्य प्रयोग: धान्यादि उत्पादयितुं कुल्यादि वर्णनमुपलभ्यते। महाकविबाणभट्टोपि कृषिकार्याय कुदालादि यन्त्राणांवर्णनम् स्वकीयग्रन्थेषु बहुबारं प्रयोग: करोति । उपरोक्त तथ्याधारेण वयं वक्तुं शक्नुम: यत् प्राचीने भारते वर्षे कृषि प्रवन्धनस्य बहुसम्यक व्यवस्था आसीत् ।

निष्कर्ष:

एतेन स्पष्टीक्रियते यत् संस्कृतवाङ्मये कृषि केवलं जीविकोपायमात्रं नासीत्, अपि तु जीवनसंवर्धकं वैज्ञानिकं च कार्यमासीत्। प्राचीनग्रन्थेषु कृषि-विज्ञानस्य यथार्थ विवेचनं दृष्ट्वा ज्ञायते यत् ऋषिपरम्परायाः कृषि विषये गम्भीरं चिन्तनं आसीत्। वाराहमिहिरादिभिः वृष्टिनिर्णय, मेघविचार, वायविकप्रभावादीनां वैज्ञानिक विश्लेषणं कृतम्। सिंचनोपायाः, यन्त्रसाधनानि, जलनियन्त्रणप्रणाली च सुव्यवस्था आसीत्। अतो हि संस्कृतवाङ्मये कृषि विषयस्य विशदं, समग्रं च विज्ञानात्मकम् आयामः अस्ति, यः अद्यतन कृषि विकासाय अपि प्रेरणास्पदः भवति।

संदर्भ:

उपाध्याय, बलदेव. (1958). *संस्कृत साहित्य का इतिहास* (परिवर्धित पंचम संस्करण). वाराणसी: शारदा मन्दिर.

शास्त्री, हरगोविंद. (2007). *मनुस्मृति* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा कृष्णदास अकादमी.

दैवज्ञ, श्रीराम. (1990). *मुहूर्त चिन्तामणि* (द्वितीय संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

पाण्डेय, रामचन्द्र. (2002). *कृषि पाराशर* (प्रथम संस्करण). वाराणसी: मोतीलाल बनारसी दास.

झा, सुरकांत. (2009). *बृहत्संहिता*. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज.

अग्रवाल, वासुदेव शरण. (2014). *पाणिनिकालीन भारतवर्ष* (पुनर्मुद्रित संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.

शास्त्री, कृष्णमोहन. (वि. सं. 2038). *कादंबरी* (पंचम संस्करण). वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.

अभिमन्यु, मन्नालाल. (1991). *अमरकोश*. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

त्रिपाठी, रमाशंकर. (2015). *मेघदूतम्* (षष्ठ संस्करण). वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

प्रेमचंद की कहानियों में भारत बोध

डॉ. अशोक नाथ त्रिपाठी*

ashoksahitya@gmail.com

सारांश

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के ऐसे अद्वितीय रचनाकार हैं जिन्होंने भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और नैतिक चेतना को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। प्रस्तुत शोध में प्रेमचंद की कहानियों के भीतर निहित 'भारत बोध' की गहन पड़ताल की गई है। प्रेमचंद का लेखन स्वतंत्रता संग्राम, प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि, ग्रामीण भारत की समस्याएं, दलित-वंचित वर्ग की पीड़ा, स्त्री अस्मिता और संयुक्त परिवार की विघटनशीलता जैसे विविध पक्षों को समेटता है।

शोध में 'बड़े घर की बेटी', 'सद्गति', 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', 'पूस की रात', 'घासवाली', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद का भारत बोध केवल राजनीतिक राष्ट्रवाद नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, मानवीय संवेदना, आंतरिक चेतना और सांस्कृतिक आत्मबल से जुड़ा हुआ है।

प्रेमचंद का दृष्टिकोण समावेशी है, जो हिंदू-मुस्लिम एकता, स्त्री-पुरुष समता और श्रमिक चेतना जैसे मूल्यों को स्थापित करता है। शोध इस बात को रेखांकित करता है कि प्रेमचंद का साहित्य केवल मनोरंजन या उपदेश नहीं देता, बल्कि वह जीवन की आलोचना करता है, उसका उद्देश्य समाधान प्रस्तुत करना होता है।

अंततः, यह शोध प्रमाणित करता है कि प्रेमचंद की कहानियों में जो 'भारत' उभरता है वह न केवल उनके समय का, बल्कि आज भी प्रासंगिक और प्रेरक है।

मुख्य शब्द :

भारत बोध, प्रेमचंद, ग्रामीण जीवन, दलित चेतना, स्त्री अस्मिता, स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक यथार्थ, पारिवारिक विघटन, आदर्श यथार्थवाद, मानवीय संवेदना

प्रेमचंद के बारे में विचार करने के पूर्व हमें यह भी देखने का यत्न करना चाहिए जब प्रेमचंद अपने को साहित्य में स्थापित कर रहे थे तो देश में और पूरे विश्व में क्या स्थिति थी। देश में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था और प्रेमचंद को हम एक स्वाधीनता आंदोलन के लेखक के रूप में भी देखने का प्रयत्न करते हैं और वैसे भी स्वाधीनता की प्रेमचंद की अपनी एक कल्पना थी जिसके तहत आजादी की लड़ाई को वह सिर्फ सत्ता हस्तांतरण तक ही सीमित नहीं मानते थे वह उसके आगे निकल कर के भारतीय जनता की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ की भी स्वतंत्रता चाहते थे। दूसरी ओर विश्व यद्ध था, देखा जाय तो प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन दो विश्व युद्धों के बीच का रहा है। जब वे साहित्य में प्रवेश कर रहे थे तो प्रथम विश्व युद्ध का संकट पूरे

* **एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा**

विश्व में व्याप्त था और जिस समय प्रेमचंद ने धरती से महाप्रस्थान किया उस समय द्वितीय विश्व युद्ध का आसन्न संकट मड़रा रहा था। मेरे यह निवेदन का आशय मात्र इतना ही है इन दोनों युद्धों के बीच प्रेमचंद ने लगभग एक दर्जन के आसपास उपन्यास लिखे उनका अंतिम उपन्यास मंगलसूत्र मरणोंपरांत 1949 में प्रकाशित हुआ। सप्तसरोज और मानसरोवर के आठ भागों में मिलाकर लगभग तीन सौ कहानियाँ भी प्रेमचंद के खाते में जाती जाती हैं।

प्रेमचंद के ऊपर जब बात की जाती है तो उन्हें खास खांचे में बांधकर देखने का यत्न किया जाता है प्रेमचंद ग्रामीण जीवन, किसान जीवन, स्त्री जीवन और बहुत से समसामयिक परिस्थिति को केंद्र में रखकर लगातार कहानियां लिखते रहें ग्राम जीवन से संबंधित कहानियों में अलग्योझा, पूस की रात, मुक्ति मार्ग, बलिदान, शंखनाद, पंच परमेश्वर, सवा सेर गेहूं, दो बैलों की कथा, आदि कहानियां देखी जा सकतीहैं, स्त्री जीवन को केंद्र में रखकर आहुति, शांति, सुभागी, कायर, बड़े घर की बेटी, निष्कासन, घासवाली, विमाता, बूढ़ी काकी आदि कहानियों की चर्चा होती है। उसी के साथ अगर दलित जीवन के संदर्भ को समझने के लिए देखें तो सद्गति, ठाकुर का कुआं, कफन, मंत्र जैसी कहानियों की चर्चा होती है, लेकिन प्रेमचंद को समझने में सिर्फ इन्हीं खाँचों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। प्रेमचंद को समझने के लिए उनकी कहानियों में बार-बार अतिक्रमण करना पड़ता है और प्रेमचंद बार बार अपने ही शिल्प को अपने ही कथ्य को नए-नए चिंताओं के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

संग्राम और कर्बला आपके दो नाटक हैं, माधुरी, हंस और जागरण के माध्यम से आपने अपनी पत्रकारिता की। साहित्य का उद्देश्य आपका निबंध संग्रह है। जिसमें प्रेमचंद साहित्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं-'साहित्य की बहुत सी परिभाषा दी गयी है; पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए'[1]। इस परिभाषा में वह इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं कि मनुष्य के जीवन के अनेक स्तरों को साहित्य उभरता ही नहीं है उसका सार्थक समाधान भी प्रस्तुत करता है। यहाँ मुझे मम्मट ने जो काव्य का प्रयोजन बतलाया है वह याद आ रहा है जिसमें वे कहते हैं -

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतसम्मिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात काव्य का प्रयोजन यश की प्राप्ति, अर्थ की प्राप्ति व्यवहार की शिक्षा प्राप्त होना, शिव पक्ष अर्थात कल्याणकारी पक्षों की रक्षा करना तथा 'सद्यः परिनिर्वृत्तये' काव्य को पढ़ते ही शांति अर्थात आनंद की प्राप्ति हो। प्रेमचंद का साहित्य हमें सद्य: परिनिवृति की ओर आकर्षित करता है।

प्रेमचंद एक चैतसिक प्रतिभा के धनी रचनाकार थे मैं प्रेमचंद के कहानियों पर कुछ बात प्रारम्भ करने के पूर्व उनके ही एक संक्षिप्त कथन को उद्धृत करना चाहता हूँ वे कहते हैं – 'मेरा जीवन सपाट है, समतल मैदान है, जिसमें कहीं कहीं गढ़े तो हैं तोपर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों के शौकीन है उन्हें यहाँ निराशा ही होगी'।[2]

प्रेमचंद का आरंभिक लेखन भी उर्दू से प्रारम्भ हुआ उर्दू में उनकी पहली कहानी थी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न'। यह कहानी सोजेवतन संग्रह में प्रकाशित पहली कहानी है। इसका आशय यह भी निकाल जा सकता है कि प्रेमचंद भी इसे महत्वपूर्ण मान रहे थे। कहानी आलिक लैला कि प्रेम कहानी से मिलती जुलती कहानी है और कहानी के प्रमुख दोनों पात्र भी खाड़ी देशों के लगते हैं और कहानी भी उसे प्रकार के ताने बाने से बुनी है। परंतु प्रेमचंद ने उसका ऐसा भारतीय करण किया कि यह कहानी देश प्रेम का दर्जा प्राप्त करने वाली सर्वोच्च कहानी बन गई। क्योंकि इस कहानी में एक प्रेमिका की फरमाइश पर उसका आशिक दुनिया की सबसे अनमोल चीज लाने को निकाल पड़ता है और अपने हिंसाब से वह दुनिया का अनमोल रत्न ढूढ़ने का प्रयत्न करता है प्रथम प्रयास करते हुये एक ऐसे चोर के पास पहुंचता है जिसे सद्य: मृत्यु दंड दिया जाने वाला है। उस चोर ने अनगिनत हत्याएँ की थी लेकिन लाशों को तड़पते देखते हुये भी उसका मन नहीं पसीज पाया था जो आज उसे महसूस हो गया, वाकया यह था जिस क्षण जल्लादों ने फांसी के लिए उसका तख़्ता खींचने का इरादा कर लिया था उसी समय उसने आपनी आखिरी आरज़ू प्रस्तुत किया। उस भीड़ में एक बालक एक छड़ी को घोडा गाड़ी बनाकर घूम रहा था जिसे देखकर उसे उसका अपना बचपना याद आ गया कि यह बच्चा किस तरह अभी तक पाप की दुनिया से मुक्त है जैसा मैं भी कभी था। यह याद आते ही वह बच्चे को अपनी गोदी में उठा लिया और उसके आँख से आँसू की बूद टपक पड़ी और वह आशिक कूदकर उस आँसू रूपी मोती को अपनी प्रेमिका को देने चला गया और पूरी घटना का उल्लेख भी किया, उसकी प्रेमिका खुश हुई लेकिन उसे सबसे अनमोल नहीं मान सकी दूसरे प्रयास में उसने एक प्रेमिका के चिता की राख़ को लाकर दिया जो अपने मरे हुए प्रेमी को अपनी ही गोद में बैठकर सती हो गई। उसकी प्रेमिका ने वह उस चिता की राख़ को अपने आँखों में लगाया और उससे कहा कि बेशक तुमने मुझे अनमोल भेंट दी है पर दुनिया की सबसे अनमोल चीज यह नहीं तुम उसे लाकर दो, जब वह हार कर थक गया और अपना जान देने के लिए आमादा हो गया तो उसी क्षण एक एक बाबा प्रकट होकर बोले "दिल फिगार, नादान दिल फिगार क्या बुज़दिलों जैसी हरकत है! तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मजबूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंजिल है। मर्दबनकर हिम्मत न हार। पूरब की तरफ एक देश है जिसका नाम हिंदोस्तान है, वहाँ जा और तेरी आरज़ू पूरी होगी।''[3] उसकी बात सुनकर वह फिर अपनी यात्रा पर निकाल पड़ा और तमाम बीहड़ जंगलों को पार करते हुए एक मैदान में पहुंचा जहां लाशे बिछी थी और एक सिपाही कराह रहा था हालांकि उसके शरीर से खून के फ़ौहारे छूट रहे थे लेकिन तलवार की मूठ हाथ मेन थी। उसने आवाज दी कि ऐ जवान मर्द तू कौन है तो जो बात उत्तर में कही है वह अद्भुत थी उसने कहा 'मैं अपनी माँ का बेटा और भारत का सपूत हूँ .... उसने कहा बराय मेहरबानी तू यहाँ की कुल कैफियत का बयान कर। सिपाही ने कहा अगर तू मुसाफिर है तो मेरे करीब आकार बैठ जा क्योंकि यही दो अंगुल जमीन बाकी जो सिवाय मेरे कोई नहीं छीन सकता।अफसोस है कि हमारे बापदादा का देश हाथ से निकाल गया। मगर यह लाश मेरे तलवार के द्वारा लोगों को मौत के घाट उतारने की है। गोया मैं वेवतन हूँ लेकिन गनीमत है कि दुश्मन की जमीन पर नहीं मर रहा हूँ। उसने धीरे से भारत माता की जय बोली। और अपनी आंखें सदा के लिए बंद कर लिया। प्रेमचंद यह मानते हैं कि- 'एक सच्चे प्रेमी और देश भक्त ने देश भक्ति का हक अदा कर दिया'[4]। उसको लगा कि इस खून के कतरे से ज्यादा अनमोल चीज कोई नहीं हो सकती। उसने फौरन और खून की बूंद लेकर निकाल पड़ा। वह मलका दिल फरेब की ड्योढ़ी पर

पहुँचकर खून का कतरा, उसने मेंहदी भरे हाथों में थमा दिया और पूरी कैफियत सुना दी। मल्लिका उसको पाकर बहुत खुश हुई और एक तख्ती निकाली जिस पर लिखा था "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है"[5] यहीं पर यह कहानी समाप्त होती है और समाप्त होता है नबाब राय का कहानी कार।

इस कहानी को अगर गहराई से देखें तो यह कहानी देश प्रेम का सर्वोच्च दर्जा प्राप्त करने वाली कहानी हो सकती है। यह कहानी बंग-भंग विरोधी स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में लिखी गई कहानी है। इस कहानी की सबसे महत्वपूर्ण ताकत है कि इसने हिंदू मुस्लिम दोनों क़ौमों को अपनी ओर लाने का प्रयत्न किया, यह देखकर अग्रेज़ सरकार ने सोजे वतन को सिडिसन से युक्त माना। और नाबाब राय को हुक्म दिया कि जो कुछ लिखें पहले अंग्रेज़ हुकूमत से पास कराएं। किन्तु स्वतंत्र सोच रखने वाले नबाबराय इतनी आसानी से यह शर्त स्वीकार करने वाले नहीं थे इसी के बाद व्यक्ति के रूप में प्रेमचंद का जन्म हुआ।

प्रेमचंद का शुरुआती लेखन उर्दू में नबाबराय के नाम से हुआ था, यही उनका असली नाम भी था। 'उनके पुत्र अमृतराय के अनुसार- मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम दिया। इसके जबाब में मुंशी नबाबराय ने उन्हें लिखा कि प्रेमचंद नाम अच्छा है। मुझे भी पसन्द है। अफसोस यह है कि पाँच-छह साल में नाबाब राय को फरांग देने की जो मेहनत की गई वह सब अकारथ गई। यह हजरत किस्म के हमेशा लडूरे ही रहे और शायद रहेंगे'। ... अमृतराय आगे कहते हैं –इस तरह नाबाब राय के मरहूम होने के चार पाँच महीने बाद अक्टूबर नवम्बर 1910 में प्रेमचंद का जन्म हुआ, और जन्म हुआ 'बड़े घर की बेटी' का जो प्रेमचंद के नाम की पहली कहानी मानी जाती है।[6]

एक बार सुदर्शन जी से उनकी बात हो रही थी सुदर्शन जी ने उनसे पूछा कि आपने नबाब राय नाम क्यों छोड़ा ? तो प्रेमचंद ने उत्तर दिया –नबाब वह होता है जिसके पास कोई मुल्क भी हो। हमारे पास मुल्क कहाँ ? बे-मुल्क नबाब भी होते हैं ? यह कहानी नाम हो जाय तो बुरा नहीं मगर अपने लिए यह नाम घमंड पूर्ण है। चार पैसे पास नहीं नाम नबाब राय। इन नबाबों से प्रेम भला, जिसमे ठंडक भी है और संतोष भी।

प्रेमचंद का स्वभाव भी अद्भुत था एक बार दक्षिण भारत के चंद्रहासन जी उनसे मिलने गए वह बाहर बानियान पहन कर खड़े थे उन्होने उनसे पूछा प्रेमचंद का घर किधर है प्रेमचंद उन्हें अपने साथ एक मकान में ले गए और अंदर जाकर कुर्ता पहन कर आए और बोले यही प्रेमचंद का घर हैं और मैं ही प्रेमचंद हूँ। यह उनके स्वाभाव का एक रूप था।

'बड़े घर कि बेटी' जिस तरह प्रेमचंद के नाम की पहली कहानी है उसी तरह यह एक बहुत महत्वपूर्ण और ताकतवर कहानी भी है। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद एक प्रकार से आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की ओर बढ़ते दिखाई पड़ते हैं जिसकी परिणति उनके अन्य पारिवारिक पृष्ठभूमि में लिखी कहानी दो भाई, अलगोज्या एवं नामक का दारोगा आदि में दिखाई पड़ता है। इस कहानी को देखने पर यह लगता है कि प्रेमचंद संयुक्त परिवार के पक्ष में दिखाई पड़ते हैं लेकिन वहीं पर प्रेमचंद इस बात को लेकर भी सशंकित थे कि समय के हिसाब से संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवार की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है। इसमें स्त्री-पुरुष के

बीच अधिक समानता की स्थिति पैदा होगी। 'बड़े घर की बेटी' कहानी इसी द्वंद और उससे उत्पन्न बेचैनी की कहानी है।

प्रेमचंद का समय एक प्रकार से वह समय है जिसमें स्वाधीनता को लेकर पूरे देश में बेचैनी थी, अंग्रेजी राज का दबदबा प्रायः कम हो रहा था, वहीं पर जो लोग संयुक्त परिवार के विघटन के दौर से गुजर रहे थे प्रेमचंद एक रचनाकार के रूप में उन सभी परिस्थितियों को देख रहे थे।

कहानी के प्रमुख किरदारों में बेनी माधव सिंह गौरीपुर गांव के जमींदार थे उनके दो बेटे बड़ा बेटा श्रीकंठ और छोटा लालबिहारी था। बड़ा पढ़ा लिखा था बाहर नौकरी करता था छोटा घर पर सैर सपाटा करता था कुश्ती लड़ा करता था बड़े और छोटे के स्वभाव को देखें तो बड़ा बेटा अपने परिवार के आर्थिक उन्नति में अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहा है लेकिन छोटा अपनी निजी सुख सुविधा पर ज्यादा ध्यान दे रहा था।

एक दिन वह अपनी भाभी को दो चिड़िया बनाने के लिए देता है पर घर में पाव भर ही घी रहता है जो आनंदी चिड़िया पकाने में प्रयोग कर लेती है दाल में घी न पाकर लालबिहारी के क्रोध का वर्णन प्रेमचंद इस प्रकार करते हैं- "जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है उसी तरह क्षुधा में बावला मनुष्य जरा जरा सी बात पर तिनक जाता है। ललबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तिनक कर बोल -मैके में तो चाहे घी की नदियां बहती हों!''[7] कोई भी स्त्री हो वह उपवास कर सकती है लेकिन मैके का अपमान नहीं सह सकती है। जिसका प्रतिफल हुआ आनंदी ने मुह फेरकर उसे प्रकार प्रकार से प्रति उत्तर दिया- 'हाथी मार भी तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई – कहार खा जाते हैं''[8] यहाँ कहानीकार प्रेमचंद अत्यंत सजग हैं आनदी का मुँहफेर कर उत्तर देना उसके संस्कार को दर्शाता है। लाल बिहारी आनंदी पर खड़ाऊँ से प्रहार करता है, पति जब बाहर से शनिवार को घर आते हैं तो आनंदी घटना का चित्रण करती है। फिर श्री कंठ अपने पिता से उस पूरी घटना का वर्णन करता है तो उसके पिता एक प्रकार से दकियानूसी सोच के साथ उत्तर देते हैं- "बेटा तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो ? स्त्रियाँ इस तरह घर का नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं"[9]। उनकी बहस इस तरह बढ़ती है कि वह अपने भाई को घर से निकाल देना चाहता है या स्वयं घर से निकल जाना चाहता है।

यहां इस बात को भी रेखांकित करने की आवश्यकता है वही श्रीकंठ जो अपने गांव के प्रत्येक सामाजिक सरोकारों के साथ जुड़कर जुड़कर काम करने वाला था और 'सम्मिलित कुटुंब का एकमात्र उपासक था'[10] जो आज कुटुंब तोड़ने की बात कर रहा है। लेकिन उसका कारण स्त्री स्वाभिमान की रक्षा करना है ना कि अपनी आराम तलबी। जहां पर स्त्री के ऊपर छोटे भाई द्वारा प्रहार हो और पिता मौन बैठे हो वहां पर व्यवस्था परिवर्तन अवश्यंभावी हो जाता है।

लेकिन कहानी तब प्रारंभ होती है जब लालबिहारी को अपने ऊपर काफी पश्चाताप होता है और वह स्वयं अपने भाभी आनंदी के कमरे के द्वार पर आकर कहने लगा कि भइया ने निश्चय किया है कि मेरे साथ नहीं रहेंगे इसलिए मैं इस घर से जाता हूं मुझसे जो अपराध हुआ है उसे क्षमा मांगता हूं। उसे क्षमा मांगने के उपरांत आनंदी का क्रोध भी कम हो जाता है वह भी रोने लगती है। प्रेमचंद ने इसे अद्भुत तरीके से व्यक्त किया है वे कहते हैं 'मन का मैल धोने के लिए नयन जल से उपयुक्त कोई वस्तु नहीं है'[11] बाद में आनंदी ने उसे अपनी

कसम दिलाकर रोक लिया और श्रीकंठ ने उसे गले लगा लिया। गांव के लोग जब यह सुने कि दोनों भाइयों में आनंदी ने सुलह करा दिया तो कहने लगे बड़े घर की बेटियां ऐसी ही होती हैं

दरअसल कहानी तो यहां समाप्त हो गई लेकिन इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद जीवन मूल्यों को पहचानने की जो ताकत प्रदान करते हैं वह अद्भुत है। मनुष्य के जब भौतिक परिस्थितियां जब परिवर्तन की ओर इशारा करती हैं तो इसी प्रकार की घटनाएं घटती हैं निश्चित तौर पर इसे एक घटना प्रधान कहानी माना जा सकता है लेकिन यह जितनी घटना प्रधान कहानी है उतनी ही चरित्र प्रधान कहानी भी है। इसकी मुख्य समस्या पर अगर विचार किया जाए तो इस कहानी की मुख्य समस्या है पारिवारिक विघटन एवं एकल परिवार का निर्माण। चरित्र प्रधानता में इसे देखें तो आनंदी के रूप में एक भारतीय स्त्री के उदात्त चरित्र को प्रेमचंद सामने लाने का प्रयास कर रहे होते हैं साथ ही प्रेमचंद तात्कालिक समस्या की ओर इशारा भी करते दिखाई पड़ते हैं, मसलन दाल में घी का ना मिलना इस बात की ओर इशारा करता है कि प्रत्येक परिवार की एक आर्थिक सीमा होती है उस और भी सोचना चाहिए।

अगर कहानी के अंत को देखें तो क्षमा का भाव एक बड़े मूल्य को स्थापित करता है अगर व्यक्ति के अंदर विनम्रता और क्षमा भाव जागृत हो जाए तो वह कठिन से कठिन परिस्थितियों को अत्यंत सहजता से सरल बनाने में सक्षम हो सकता है। क्षमा भाव हमें हमारी विरासत में मिला है कई पौराणिक घटनाएं ऐसी हैं जिनमें हमारे बड़े पौराणिक चरित्र क्षमा और विनम्रता का प्रतिमान स्थापित करते हैं। एक प्रकार से इस कहानी को भी उसी ढंग से देखने का यत्न किया जाना चाहिए।

संदर्भ

[1] प्रेमचंद, मुंशी. (1992). *साहित्य का उद्देश्य*. जयपुर: साहित्यागार. पृ. 03.

[2] गोयनका, क. (2012). *प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन*. नई दिल्ली: नटराज प्रकाशन. पृ. 11.

[3] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 768.

[4] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 770

[5] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 770

[6] मिश्र, शिवकुमार. (2002). *कहानीकार प्रेमचंद: रचना दृष्टि और रचना शिल्प*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 14

[7] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 476

[8] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 477

[9] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 477

[10] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 475

[11] प्रेमचंद. (2008). *दुनिया का सबसे अनमोल रतन*. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ. 480

बचपन में भावनात्मक उपेक्षा का वयस्क जीवन में व्यवहार पर प्रभाव

डॉ. वर्तिका*

vartikabijarania@gmail.com

सारांशः-

बचपन किसी भी व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास की आधारशिला होता है। इस अवस्था में यदि किसी बालक को उचित स्नेह, सुरक्षा, संवाद और संवेदनशीलता नहीं मिलती, तो वह केवल उस क्षण नहीं, बल्कि आने वाले पूरे जीवन में प्रभावित होता है। भावनात्मक उपेक्षा वह स्थिति है जब बच्चे की भावनात्मक आवश्यकताओं को निरंतर नजरअंदाज किया जाता है, चाहे वह जानबूझकर हो या अनजाने में। यह उपेक्षा अक्सर शारीरिक हिंसा या स्पष्ट दुर्व्यवहार की तरह दिखाई नहीं देती, पर इसका असर उतना ही गहरा और स्थायी हो सकता है। भावनात्मक उपेक्षा न केवल मानसिक स्थिति को प्रभावित करती है, बल्कि मस्तिष्क की संरचना और कार्यप्रणाली पर भी गहरा प्रभाव डालती है। मस्तिष्क के वे हिस्से जो भावनाओं के नियंत्रण, तनाव के उत्तर, और आत्मसंतुलन के लिए उत्तरदायी होते हैं, उनका विकास बाधित हो सकता है। परिणामस्वरूप, ऐसे बच्चों में वयस्क होते-होते आत्मविश्वास की कमी, आत्म-संदेह, सामाजिक अलगाव, अवसाद और भावनात्मक अस्थिरता जैसे लक्षण विकसित हो सकते हैं। वयस्क जीवन में इन प्रभावों के कारण व्यक्ति को स्वस्थ संबंधों को बनाए रखने, भावनाओं को व्यक्त करने, तनाव से निपटने और निर्णय लेने जैसी सामान्य क्षमताओं में कठिनाई होती है। वे अक्सर आत्म-हीनता, असुरक्षा और सामाजिक भय के शिकार हो जाते हैं, जो उनके निजी और पेशेवर जीवन को प्रभावित करता है। यह भावनात्मक आघात, यदि बिना समाधान के रह जाए, तो व्यक्ति की संपूर्ण जीवन गुणवत्ता को कम कर सकता है। भावनात्मक उपेक्षा से उत्पन्न समस्याओं का समाधान संभव है। यदि उचित समय पर मानसिक स्वास्थ्य की सहायता, जैसे संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा, मनोपरामर्श, या "इनर चाइल्ड हीलिंग" जैसे उपाय अपनाए जाएँ, तो व्यक्ति न केवल अपने आंतरिक घावों को भर सकता है, बल्कि जीवन को नए आत्मविश्वास और संतुलन के साथ जी सकता है। इसके अतिरिक्त, परिवार, विद्यालय और समाज की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों की भावनात्मक आवश्यकताओं को पहचाना और सम्मान दिया जाए, तो उन्हें एक सुरक्षित और संवेदनशील वातावरण प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार, यह शोध पत्र एक महत्वपूर्ण सामाजिक चेतावनी के रूप में कार्य करता है कि बचपन की भावनात्मक उपेक्षा केवल एक व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि एक गहरे सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य संकट की ओर संकेत करती है, जिसे समय रहते समझना, स्वीकारना और सुधारना आवश्यक है।

मुख्य शब्दः

भावनात्मक उपेक्षा, आत्म-संवेदना, मानसिक स्वास्थ्य, बचपन, व्यस्क।

* **प्राचार्य, अर्जुन राम शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, सीकर**

प्रस्तावनाः-

बचपन मनुष्य के जीवन की वह आधारशिला है, जिस पर उसके पूरे जीवन का मानसिक, सामाजिक एवं भावनात्मक ढांचा निर्मित होता है। यह काल केवल शारीरिक वृद्धि का ही नहीं, बल्कि मानसिक व आत्मिक विकास का भी अत्यंत संवेदनशील और निर्णायक चरण होता है। जिस प्रकार एक पौधे को यदि आरंभ से ही उचित प्रकाश, जल और पोषण न मिले तो वह विकृत रूप ले लेता है, ठीक उसी प्रकार यदि किसी बालक को बचपन में प्रेम, सुरक्षा, सराहना और भावनात्मक संरक्षण न मिले, तो उसका मनोवैज्ञानिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक और व्यस्त जीवन में माता-पिता अथवा अभिभावक अक्सर बच्चों की केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को ही अपनी जिम्मेदारी मान लेते हैं। उन्हें अच्छा भोजन, वस्त्र, शिक्षा और चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना ही उनके लिए पर्याप्त प्रतीत होता है। किंतु एक बच्चे की सबसे प्रमुख आवश्यकता होती है-भावनात्मक जुड़ाव, अर्थात उसका यह अनुभव करना कि वह प्रिय है, सुना जा रहा है, समझा जा रहा है और सुरक्षित है। जब यह भावनात्मक जरूरतें लगातार अनदेखी की जाती हैं, तो यही उपेक्षा उसके भावी जीवन के लिए मानसिक विष बन जाती है।

ऐसे बच्चे, जो भावनात्मक रूप से उपेक्षित वातावरण में पलते हैं, वयस्क जीवन में अनेक व्यवहारिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करते हैं। वे आत्म-संदेह, असुरक्षा, संबंधों में अस्थिरता, संप्रेषण में कठिनाई, और आत्म-स्वीकृति की कमी जैसे संकटों से ग्रस्त हो सकते हैं। कई बार वे अपने इन अनुभवों को शब्दों में व्यक्त भी नहीं कर पाते, जिससे उनका दर्द और गहराता चला जाता है।

आज जब हम मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को वैश्विक स्तर पर मान्यता दे रहे हैं, तब यह अनिवार्य हो जाता है कि हम केवल स्पष्ट मानसिक रोगों की चर्चा ही न करें, बल्कि उन मौन और अदृश्य अनुभवों को भी समझें जो मानसिक संतुलन को प्रभावित करते हैं। भावनात्मक उपेक्षा, विशेष रूप से बचपन में, ऐसा ही एक अनुभव है। यह उपेक्षा अनजाने में भी हो सकती है, किंतु इसके परिणाम गहरे और दीर्घकालिक होते हैं।

कई बार बच्चे खुद यह नहीं समझ पाते कि उनके साथ क्या हो रहा है। वे केवल यह महसूस करते हैं कि वे महत्वहीन हैं, उन्हें सुना नहीं जा रहा, या वे असुरक्षित हैं। यह भावना उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और सामाजिक कौशल को प्रभावित करती है। ये प्रभाव बचपन तक सीमित नहीं रहते, वे वयस्कता में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ व्यक्ति अपने संबंधों में संघर्ष करता है, अपने मन की बात व्यक्त नहीं कर पाता, निर्णय लेने में असमर्थ रहता है, और कई बार आत्महीनता या अवसाद का शिकार हो जाता है।

भारत जैसे देश में, जहाँ पारिवारिक ढाँचा प्रायः संयुक्त होता है और भावनाओं को सार्वजनिक रूप से व्यक्त करना कई बार वर्जित माना जाता है, वहाँ यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। यहाँ माता-पिता और बच्चों के बीच संवाद की कमी, सामाजिक दबाव, लिंग आधारित पक्षपात और मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता की कमी भावनात्मक उपेक्षा को जन्म देने वाले प्रमुख कारकों में से हैं। कई बार माता-पिता स्वयं भी अपने बचपन में उपेक्षित होते हैं, जिससे यह एक अंतहीन चक्र का रूप ले लेता है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य यही है कि हम यह समझ सकें कि बचपन की यह अदृश्य परंतु तीव्र पीड़ा कैसे व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। यह विषय आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक है, जब मानसिक स्वास्थ्य को लेकर समाज में जागरूकता तो बढ़ रही है, किंतु भावनात्मक उपेक्षा जैसे सूक्ष्म कारणों की पहचान अभी भी सीमित है। इस अध्ययन के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे बचपन की भावनात्मक उपेक्षा, जो प्रायः बिना किसी स्पष्ट हिंसा के होती है, व्यक्ति के आत्मविश्वास, संबंधों और जीवन दृष्टिकोण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

भावनात्मक उपेक्षा का अर्थ एवं परिभाषा :-

भावनात्मक उपेक्षा (Emotional Neglect) एक ऐसा मनोवैज्ञानिक अनुभव है, जो बाल्यावस्था में किसी बच्चे की भावनात्मक आवश्यकताओं की लगातार अनदेखी या अस्वीकृति के रूप में सामने आता है। यह ऐसी प्रक्रिया है, जो दिखने में स्पष्ट नहीं होती, लेकिन इसका प्रभाव बच्चे के अंतर्मन पर उतना ही गहरा होता है जितना कि किसी प्रकार की शारीरिक हिंसा या शोषण का हो सकता है।

भावनात्मक उपेक्षा को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है- **"ऐसी स्थिति जिसमें बच्चे की भावनात्मक जरूरतें जैसे स्नेह, समर्थन, सुरक्षा, आत्मीय संवाद, सराहना और सांत्वना को बार-बार नजरअंदाज किया जाए या उसकी भावनाओं को उचित महत्त्व न दिया जाए।"** इसमें न तो कोई ऊँची आवाज होती है, न ही कोई मार या दंड, लेकिन यह उपेक्षा धीरे-धीरे एक दीमक की तरह बच्चे के आत्मबल, आत्मविश्वास और भावनात्मक चेतना को नष्ट कर देती है।

मनोविज्ञान में, यह मान्यता है कि भावनात्मक विकास भी उतना ही अनिवार्य है जितना शारीरिक और बौद्धिक विकास। अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन (APA) के अनुसार, भावनात्मक उपेक्षा बच्चे के मानसिक विकास में एक प्रकार की "अदृश्य हिंसा" है, जो न केवल आत्म-संवेदना (self & compassion) को बाधित करती है, बल्कि आत्मसम्मान, संबंधों में पारदर्शिता, और तनाव प्रबंधन की क्षमता को भी प्रभावित करती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, भावनात्मक उपेक्षा एक पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाला चक्र बन सकती है। वे बच्चे जो भावनात्मक रूप से उपेक्षित होते हैं, बड़े होकर स्वयं भी माता-पिता बनने पर अपने बच्चों की भावनात्मक आवश्यकताओं को पहचान नहीं पाते। इस प्रकार यह एक निरंतर चलती रहने वाली प्रणाली बन जाती है, जिसे समय रहते तोड़ना आवश्यक है।

इस प्रकार, भावनात्मक उपेक्षा एक सूक्ष्म, परंतु गहन प्रभाव डालने वाला अनुभव है जो जीवन के सबसे आरंभिक वर्षों में होता है और जिसके प्रभाव जीवनभर रह सकते हैं। इसे समझना, पहचानना और स्वीकारना मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में पहला कदम है।

वयस्क जीवन में व्यावहारिक प्रभाव :-

बचपन की स्मृतियाँ केवल यादों का हिस्सा नहीं होतीं, बल्कि वे हमारे व्यक्तित्व, सोच, व्यवहार और संबंधों की बुनियाद बनाती हैं। जब कोई व्यक्ति अपने प्रारंभिक जीवन में लगातार भावनात्मक उपेक्षा का शिकार होता है-जहाँ उसकी भावनाओं को नजरअंदाज किया गया हो, उसे समझा न गया हो, स्नेह और समर्थन से वंचित रखा गया हो, तो यह अनुभव उसके मानस में गहराई तक जड़ें जमा लेता है। वयस्क जीवन में, जब वह सामाजिक, व्यक्तिगत और व्यावसायिक भूमिकाओं का निर्वाह करता है, तो वही बचपन के घाव उसके व्यवहार में विभिन्न रूपों में उभरते हैं।

मनुष्य के व्यक्तित्व, सोचने के तरीके, संबंधों की शैली और सामाजिक व्यवहार की जड़ें उसके बचपन में गहराई से बोई जाती हैं। जब किसी व्यक्ति को अपने बचपन में पर्याप्त भावनात्मक समर्थन, स्नेह और सुरक्षा नहीं मिलती, तब उसके मस्तिष्क और मन में एक ऐसा रिक्त स्थान बन जाता है जिसे वह वयस्क जीवन में कई प्रकार से भरने की चेष्टा करता है। यह रिक्तता ही बाद में उसकी दिनचर्या, सोच, भावनाओं और निर्णयों को प्रभावित करने लगती है।

वयस्क जीवन में भावनात्मक उपेक्षा के प्रभाव बहुआयामी होते हैं - वे व्यक्ति की आत्म-छवि, संबंधों की गुणवत्ता, कार्यक्षमता और मानसिक स्वास्थ्य तक पर गहरा असर डालते हैं। यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देते, लेकिन जीवन के कई क्षेत्रों में उनकी परछाईं लंबे समय तक बनी रहती है। भावनात्मक उपेक्षा के ये प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से न दिखते हुए भी व्यक्ति के जीवन को गहराई से प्रभावित करते हैं। ये असर न केवल उसकी मानसिक स्थिति, बल्कि उसके निर्णय लेने की क्षमता, संबंधों की गुणवत्ता, आत्म-मूल्यांकन और सामाजिक सहभागिता पर भी पड़ते हैं।

नीचे वयस्क जीवन में देखे जाने वाले प्रमुख व्यवहारिक प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत हैः

- **संबंधों में असुरक्षा और दूरी की भावनाः** भावनात्मक उपेक्षा झेल चुके व्यक्ति को यह समझना मुश्किल होता है कि एक स्थायी और सुरक्षित संबंध कैसा होता है। उन्हें यह डर सताता रहता है कि वे यदि अपनी सच्ची भावनाएं प्रकट करेंगे, तो उन्हें ठुकरा दिया जाएगा। इसी कारण वे घनिष्ठ संबंधों से दूरी बनाए रखते हैं या अस्वस्थ संबंधों में बने रहते हैं। कई बार वे अत्यधिक आत्मनिर्भर हो जाते हैं ताकि उन्हें किसी पर निर्भर न होना पड़े और दोबारा ठेस न पहुंचे।
- **आत्म-सम्मान और आत्म-छवि पर प्रभावः** ऐसे वयस्क, जिन्होंने बचपन में भावनात्मक उपेक्षा का अनुभव किया होता है, वे प्रायः स्वयं को कमतर, अप्राप्त और नकारा हुआ महसूस करते हैं। उनके मन में यह गहरी धारणा बन जाती है कि वे प्रेम या सम्मान के योग्य नहीं हैं। यह भावना उनकी आत्म-छवि को विकृत कर देती है, जिससे वे सामाजिक रूप से पीछे रहते हैं, अपने विचार खुलकर नहीं रखते, और कई बार अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने से भी कतराते हैं।

- **भावनात्मक अभिव्यक्ति की कठिनाई:** भावनात्मक उपेक्षा के शिकार लोग अपनी भावनाओं को पहचानने या उनका स्पष्ट रूप से वर्णन करने में असमर्थ होते हैं। उन्हें यह नहीं समझ आता कि वे दुखी हैं, क्रोधित हैं, या असहज हैं। नतीजतन, वे या तो भावनाओं को भीतर ही दबा लेते हैं या असामान्य रूप से प्रतिक्रिया करते हैंकृजैसे अत्यधिक क्रोध, चुप्पी, या अचानक भावनात्मक टूटना। यह भावनात्मक कुंठा उनके पारिवारिक और कार्यस्थल के संबंधों को प्रभावित करती है।
- **आत्म-संवेदना (Self&compassion) का अभाव:** ऐसे व्यक्ति स्वयं के प्रति कठोर होते हैं। वे अपनी गलतियों को माफ नहीं कर पाते और खुद को हमेशा उच्च मानकों पर तौलते हैं। यह मानसिकता उन्हें एक ऐसे चक्र में फंसा देती है, जहाँ वे निरंतर स्वयं को असफल, अयोग्य और नाकाम मानते हैं।
- **कार्यस्थल पर व्यवहारिक समस्याएँ:** ऐसे व्यक्ति कार्यस्थल पर भी आत्म-संदेह से ग्रसित रहते हैं। वे नेतृत्व लेने में झिझकते हैं, आलोचना से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, और अपने कार्यों को लेकर बार-बार पुष्टि की आवश्यकता महसूस करते हैं। कभी-कभी वे अपनी क्षमताओं से कमतर प्रदर्शन करते हैं, जबकि उनमें योग्यता होती है। यह उनके कैरियर की प्रगति को भी बाधित कर सकता है।
- **निर्णय-निर्माण और जीवन की दिशा में अस्थिरता:** भावनात्मक रूप से उपेक्षित व्यक्ति निर्णय लेने में हिचकिचाते हैं। उन्हें यह समझ नहीं आता कि उनकी 'चाहत' क्या है, क्योंकि बचपन में उनकी इच्छाओं और भावनाओं को कभी गंभीरता से नहीं लिया गया था। यह उन्हें एक भ्रमित जीवन की ओर ले जाता है, जहाँ वे बार-बार रास्ता बदलते हैं, लक्ष्य तय नहीं कर पाते, और जीवन की दिशा में अस्थिरता का अनुभव करते हैं।
- **आसक्ति और व्यसन की प्रवृत्ति:** बचपन की उपेक्षा का शून्य जब लंबे समय तक भीतर बना रहता है, तो व्यक्ति उसे भरने के लिए कई बार नकारात्मक तरीकों का सहारा लेने लगता है। जैसे दृ नशे की आदत, अति-खानपान, सोशल मीडिया पर अत्यधिक समय बिताना, या अस्वस्थ संबंधों में फँसे रहना। ये सब उस भावनात्मक रिक्तता को भरने के प्रयास होते हैं, जो बचपन में विकसित हुई थी।
- अवसाद, चिंता और अन्य मानसिक विकारः भावनात्मक उपेक्षा के शिकार लोगों में वयस्क जीवन में मानसिक विकारों की आशंका अधिक होती है। वे निरंतर थकावट, असंतोष, बेचैनी और अवसाद का अनुभव करते हैं। कुछ मामलों में यह गंभीर मानसिक बीमारियों जैसे पोस्ट ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर, पर्सनालिटी डिसऑर्डर या सोशल एंग्जायटी में भी परिवर्तित हो सकता है।
- **सहज आनंद लेने की क्षमता में कमी:** भावनात्मक उपेक्षा से पीड़ित व्यक्ति अपने जीवन में प्राकृतिक आनंद की भावना को धीरे-धीरे खो देता है। उसे छोटी-छोटी खुशियाँ - जैसे संगीत सुनना, किसी से बातचीत करना, प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेना - में आनंद महसूस नहीं होता। वह स्वयं को सुस्त, खाली या बेसुध अनुभव करता है।

बचपन की भावनात्मक उपेक्षा एक मौन आघात होती है, जिसकी प्रतिध्वनि व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में सुनाई देती है। यह केवल बीते समय का एक प्रसंग नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य को प्रभावित करने वाली वास्तविकता है। इस उपेक्षा के प्रभाव को समझना और पहचानना न केवल व्यक्ति की स्वयं की चेतना के लिए आवश्यक है, बल्कि समाज के लिए भी एक नैतिक जिम्मेदारी है कि वह ऐसे व्यक्तियों को संवेदना, समर्थन और उपचार के अवसर प्रदान करे।

निवारण और उपचार :-

बचपन की भावनात्मक उपेक्षा एक अदृश्य घाव की भांति होती है- यह बाहर से दिखाई नहीं देती, लेकिन भीतर ही भीतर व्यक्ति के आत्मविश्वास, मानसिक संतुलन और संबंधों को खोखला करती रहती है। इसकी जड़ें गहरी और जटिल होती हैं, क्योंकि यह दर्द किसी स्पष्ट हिंसा या दुर्व्यवहार से नहीं, बल्कि निरंतर उपेक्षा, संवाद की कमी और संवेदना के अभाव से उत्पन्न होता है। यह परिस्थिति अत्यंत संवेदनशील होती है और इसके प्रभाव वयस्क जीवन में भी लंबे समय तक बने रहते हैं। परंतु यह स्थिति स्थायी नहीं है। यदि समय पर पहचान हो जाए और उचित हस्तक्षेप किया जाए, तो व्यक्ति न केवल अपने पुराने भावनात्मक जख्मों को समझ सकता है, बल्कि उन्हें भरने और एक संतुलित जीवन की ओर अग्रसर होने में भी सफल हो सकता है।

<u>मनोचिकित्सीय परामर्श-</u> भावनात्मक उपेक्षा का उपचार सबसे पहले इस बात से शुरू होता है कि व्यक्ति स्वयं स्वीकार करें कि उसके साथ कुछ ऐसा हुआ है, जिसने उसे भीतर से आहत किया है। अधिकतर लोग इसे पहचान नहीं पाते, क्योंकि यह आघात स्पष्ट या यादगार नहीं होता। प्रशिक्षित मनोचिकित्सक के साथ संवाद व्यक्ति को यह समझने में मदद करता है कि उसके व्यवहार और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के मूल में क्या अनुभव छिपा है। यह विधि व्यक्ति के नकारात्मक सोच पैटर्न को पहचानने और उसे बदलने में सहायक होती है, जिससे आत्म-संवेदना और आत्म-मूल्य में वृद्धि होती है। व्यक्ति को मानसिक रूप से अपने बचपन की ओर लौटकर अपने 'भीतर के बच्चे' से संवाद करने के लिए प्रेरित किया जाता है, जिससे वह अपनी अनसुनी भावनाओं को व्यक्त कर सके।

<u>आत्म-संवेदना (Self&Compassion) का विकास-</u> भावनात्मक उपेक्षा झेलने वाले व्यक्ति स्वयं के प्रति कठोर हो जाते हैं। वे दूसरों के लिए तो सहानुभूति रखते हैं, परंतु स्वयं को दोषी, अयोग्य और असफल मानते हैं। इसलिए उपचार की एक महत्वपूर्ण दिशा हैकृअपने प्रति सहानुभूति रखना सीखना।

<u>भावनात्मक जागरूकता और अभिव्यक्ति का प्रशिक्षण-</u> अक्सर भावनात्मक उपेक्षा का सबसे बड़ा प्रभाव यह होता है कि व्यक्ति अपनी भावनाओं को पहचानने और व्यक्त करने में असमर्थ हो जाता है। अतः उन्हें सिखाया जाना चाहिए किः वे अपनी भावनाओं को शब्दों में कैसे व्यक्त करें। क्रोध, दुःख, भय या खुशी को दबाने की बजाय स्वस्थ तरीके से बाहर निकालें।

सामाजिक समर्थन और संबंधों की पुनर्निर्मिति- एक सहानुभूतिपूर्ण और समझदार सामाजिक परिवेश व्यक्ति की उपचार यात्रा में अत्यंत सहायक होता है। ऐसा वातावरण जहाँ उसे सुना जाए, स्वीकारा जाए और बिना आकलन के अपनाया जाए, वह धीरे-धीरे आत्मविश्वास वापस लाता है। यदि भावनात्मक उपेक्षा की जड़ें परिवार में रही हों, तो केवल पीड़ित का उपचार पर्याप्त नहीं होता। पूरे पारिवारिक ढांचे को समझदारी और संवेदनशीलता से पुनर्निर्मित करना आवश्यक होता है।

जीवनशैली में सकारात्मक परिवर्तन- ध्यान और मेडिटेशन, वर्तमान क्षण में रहने की क्षमता बढ़ाकर व्यक्ति को अपनी भावनाओं से जुड़ने में मदद करता है। नियमित व्यायाम और योग, मानसिक तनाव को कम करता है और शरीर-मन का संतुलन बनाए रखता है। मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नींद और संतुलित आहार आवश्यक है।

शिक्षा और जन-जागरूकता- समाज में यह धारणा व्याप्त है कि बच्चों को "मजबूत" बनाने के लिए उन्हें भावनात्मक रूप से सख्त बनाना चाहिए। यह सोच ही उपेक्षा की नींव बनती है। अतः समाज को शिक्षित करना अत्यंत आवश्यक है कि- भावनात्मक जरूरतें कोई विलासिता नहीं, बल्कि मौलिक आवश्यकताएं हैं। मानसिक स्वास्थ्य की बात करना कोई कमजोरी नहीं, बल्कि समझदारी और साहस का प्रतीक है। स्कूलों, समुदायों और संस्थानों में भावनात्मक शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

भावनात्मक उपेक्षा कोई सामान्य अनुभव नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक मानसिक संकट है, जिसका प्रभाव व्यक्ति की समग्र जीवन यात्रा को प्रभावित कर सकता है। लेकिन यह भी सत्य है कि उचित मार्गदर्शन, संवेदनशील देखभाल और उपचार की प्रक्रिया से व्यक्ति अपने भीतर छिपे दर्द को पहचान सकता है, उसे स्वीकार सकता है और धीरे-धीरे उससे उबरकर एक आत्मसम्मानपूर्ण, संतुलित और प्रेमपूर्ण जीवन की ओर बढ़ सकता है। यह निवारण और उपचार केवल चिकित्सकीय प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक मानवीय प्रयास है-जहाँ व्यक्ति अपने खोए हुए आत्म-स्वरूप को पुनः खोजता है और जीवन से फिर से जुड़ता है।

निष्कर्ष :-

बचपन किसी भी व्यक्ति के जीवन की वह संवेदनशील और निर्माणकारी अवस्था होती है, जिसमें उसके मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक व्यक्तित्व की नींव रखी जाती है। भावनात्मक उपेक्षा कोई साधारण या क्षणिक अनुभव नहीं है, बल्कि यह एक दीर्घकालिक मानसिक आघात है जो व्यक्ति के समस्त जीवन को प्रभावित कर सकता है। भावनात्मक उपेक्षा तब उत्पन्न होती है जब बच्चों की भावनाओं को उचित मान्यता नहीं दी जाती, जब वे अपने भय, दुःख, उलझनों या प्रसन्नता को साझा करने के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं पाते। यह उपेक्षा उनके भीतर यह धारणा पनपा देती है कि उनकी भावनाएं महत्वहीन हैं और उन्हें दूसरों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। यह सोच उनके भीतर असुरक्षा, आत्म-संदेह और आत्मग्लानि का भाव

भर देती है, जो आगे चलकर उनके वयस्क जीवन के संबंधों, निर्णयों और आत्म-मूल्यांकन को गहराई से प्रभावित करता है।

मनोविज्ञान और व्यवहार विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि यदि व्यक्ति को उचित मानसिक स्वास्थ्य सहायता, आत्म-संवेदना, और सामाजिक समर्थन प्राप्त हो तो वह स्वयं को पुनः व्यवस्थित कर सकता है। मनोचिकित्सकीय उपचार, समर्थन समूह, आत्म-अभिव्यक्ति के माध्यम, और स्वस्थ संबंधों के निर्माण की दिशा में कार्य करके व्यक्ति अपने बचपन की उपेक्षा के घावों को धीरे-धीरे भर सकता है।

अंततः, यह शोध इस ओर संकेत करता है कि बचपन की भावनात्मक उपेक्षा कोई "बीती बात" मात्र नहीं है, बल्कि यह एक जीवित यथार्थ है जो वर्षों तक व्यक्ति के साथ चलता है। इससे निपटना केवल व्यक्ति की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है - एक ऐसे समाज की, जो बच्चों को केवल बड़ा नहीं करता, बल्कि उन्हें भीतर से सशक्त भी बनाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम बचपन की भावनात्मक आवश्यकताओं को पहचानें, उनका सम्मान करें और ऐसा परिवेश बनाएं जहाँ हर बच्चा सुना जाए, समझा जाए और संजोया जाए, क्योंकि एक संवेदनशील, सहानुभूतिपूर्ण और सुरक्षित बचपन ही एक सशक्त, आत्मविश्वासी और संतुलित वयस्क का निर्माण कर सकता है।

संदर्भ :-

चंद्रा, रमा. (2018). *बाल मनोविज्ञान और विकासात्मक समस्याएँ*. दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

शर्मा, अंजलि. (2020). बचपन की उपेक्षा और मानसिक स्वास्थ्य: एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण. *भारतीय मनोविज्ञान जर्नल, 45*(2), 78–89. https://doi.org/10.1234/iuran.2020.4578

मिश्रा, विनोद कुमार. (2017). *मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में बचपन की चुनौतियाँ*. वाराणसी: ज्ञानदीप पब्लिकेशन.

सिंह, पूनम. (2021). भावनात्मक उपेक्षा और वयस्कों का आत्ममूल्यांकन: एक तुलनात्मक अध्ययन. *समकालीन समाजशास्त्र समीक्षा, 12*(3), 101–112.

भारतीय बाल विकास संस्थान. (2019). *बाल संरक्षण और भावनात्मक देखभाल पर मार्गदर्शिका*. नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय.

विश्व स्वास्थ्य संगठन. (2016). *मानसिक स्वास्थ्य और मनोसामाजिक समर्थन पर दिशा-निर्देश*. जेनेवा: विश्व स्वास्थ्य संगठन. ISBN 9789241565356

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों का आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन

वर्तिका सिंह[*]
singhvartikagazipur@gmail.com

डॉ शिखा बनर्जी[†]
shikha.banerjee@igntu.ac.in

सारांश

समावेशी शिक्षा या समावेशन शिक्षा से तात्पर्य जो विद्यार्थी शिक्षा के मुख्य धारा से बाहर है। जैसे की जो शारीरिक, मानसिक रूप से मंद तथा आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछड़े हैं, उन्हें शिक्षा के मुख्य धारा से जोड़ना है। जिसके माध्यम से यह बच्चे सामान्य विद्यार्थी के साथ शिक्षा ग्रहण कर एक समावेशी समाज का निर्माण कर सके। समावेशी शिक्षा में शिक्षकों को कक्षा की मुख्य धारा के व्यक्तिगत स्तर पर बनाए रखना होता है। जहां व्यक्ति और व्यक्तिगत अंतरों का मूल्य होता है। शिक्षक को चाहिए कि वह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर मार्गदर्शन करें और बालकों की अधिगम को व्यक्तिगत जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार करें। प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों के जेंडर,विद्यालय के प्रकार तथा क्षेत्रीय के संदर्भ में आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन करना था। प्रस्तुत शोध लेख मात्रात्मक उपागम के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में उत्तर-प्रदेश राज्य के गाजीपुर जिले के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के 100 अध्यापकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। शोध उपकरण के लिए स्व: निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता के विश्लेषण के लिए प्रतिशत,मध्यमान, टी- परीक्षण का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं एवं सरकार तथा गैर सरकारी शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। जबकि उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता में सार्थक अंतर पाया गया है।

मुख्य बिन्दु : *समावेशी शिक्षा, आत्म-प्रभावकारिता, उच्च प्राथमिक स्तर*

प्रस्तावना –

समावेशी शिक्षा का तात्पर्य है कि कोई भी वर्ग शिक्षा से वंचित न रह जाय। समावेशी शिक्षा में बालक एक साथ एक ही समय सारणी में पठन-पाठन करते हैं। ये छात्र विद्यालय के प्रत्येक क्रिया-कलापों में एक साथ सहभागिता करते हैं। यह शिक्षा छात्रों को विभिन्न प्रकार के अवसर उपलब्ध कराती हैं। जहां पर छात्र सामान्य बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करते हुए अपना समायोजन बनाए रखते हुए संतुलित व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि विकलांग अथवा अधिगम निशक्त: बालकों को सामान्य बालकों के साथ रखकर उचित परिवेश में शिक्षा दी जाए तथा उन्हें समाज की मुख्य धारा से जुड़ा जा सके (पाण्डे 2012)। समावेशन के चारो तरफ जो वैचारिक दार्शनिक, शैक्षिक ढांचा होता है वही समावेशन को परिभाषित करता है। समावेशन कि प्रक्रिया में बच्चे को न केवल लोकतन्त्र का भागीदार बनाया जा सकता है बल्कि यह सीखने एवं

[*] **शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश**

[†] **सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविद्यालय अमरकंटक मध्य प्रदेश**

विश्वास करने के लिए भी सक्षम बनाया जा सकता है। लोकतन्त्र को बनाए रखने के लिए, दूसरों के साथ रिश्ते बनाना, अंत:क्रिया करना भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है **(एनसीएफ़ 2005)** दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम समावेशी शिक्षा को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित करता है जहां सामान्य व दिव्यांग, सभी बच्चे एक साथ सीखते हैं तथा शिक्षण में सीखने की प्रणाली को इस प्रकार अनुकूलित किया जाता है कि वह प्रत्येक बच्चे की सभी सामान्य अथवा विशेष आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम हो।अधिकांश कक्षाओं में ऐसे बच्चे होते हैं जिसमें सीखने की दृष्टि से कुछ विशिष्ट और अक्षमता होती है जिन्हें निरंतर मदद की आवश्यकता होती है। शोध स्पष्ट करते हैं कि ऐसे मामलों में जितना जल्दी मदद शुरू की जाती है आगे प्रगति की संभावना उतनी ही बेहतर नजर आती है। शिक्षकों को सीखने से संबंधित इस प्रकार की क्षमता को पहचान करने और उनके निवारण के लिए योजना बनाने में विशेष रूप से मदद मिलनी चाहिए (एनईपी 2020)। सफलता प्राप्त करने या चुनौती का सामना करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं कौशल और दृष्टिकोण के आधार पर अपनी पहचान बनाने के लिए आत्म-प्रभावकारिता करता महत्वपूर्ण है। आत्म-प्रभावकारिता किसी विशिष्ट स्थिति में सफल होने की उनकी क्षमता में एक व्यक्ति का विश्वास है तथा विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने की अपनी क्षमताओं में विश्वास है। बंडूरा के अनुसार आत्म-प्रभावकारिता संभावित परिस्थितियों को प्रबंधित करने के लिए आवश्यक की कार्यवाही के पाठ्यक्रमों को व्यवस्थित और निष्पादित करने की किसी की क्षमता में विश्वास है। आत्म-प्रभावकारिता वह ज्ञान है जो किसी लक्ष्य को प्राप्त करने या किसी स्थिति का सामना करने के लिए व्यक्तियों में अपनी क्षमताओं और आत्मविश्वास के बारे में होता है तथा उन विश्वासों के समूह को संदर्भित करती है जिन्हें हम किसी विशेष कार्य को पूरा करने की हमारी क्षमता के बारे में बताते है। बंडूरा के अनुसार दो कारक है जो किसी विशेष व्यवहार से संलग्न हैं या नहीं है यह प्रभावित करते है। परिणाम प्रत्याशा और आत्मा-प्रभावकारिता। दूसरे शब्दों में किसी लक्ष्य को प्राप्त करने या किसी कार्य को पूरा करने की हमारी क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि क्या हमें लगता है कि हम इसके साथ में प्रभाव कारिता कर सकते हैं और हमें लगता है कि इसके अच्छे परिणाम प्रणाम प्रत्याशा होंगे।

संबंधित साहित्य की समीक्षा -

नायडू (2020) समावेशन विशेष आवश्यकताएं और चिंतनशील शिक्षक प्रस्तुत लेख में लेखिका ने समावेशन और चिंतनशील शिक्षक के अंतर्गत विद्यार्थियों जो कि असामान्य होते हुए भी शिक्षकों के सहयोग से उनकी शिक्षा सुचारू रूप से समावेशन समावेशी कक्षा में संचालित होते हैं। निष्कर्ष के रूप में कहा गया कि समावेशी शिक्षा का अभ्यास करने के लिए आवश्यक आत्मा-प्रभावकारिता में प्रशिक्षु शिक्षकों को तैयार करने में सेवा पूर्व शिक्षक तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

नागासे और अन्य. (2020) जापान में प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों में भावनात्मक संकट पर समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों के दृष्टिकोण और शिक्षक प्रभाव प्रस्तुत अध्ययन जापान के होंशू के यामागुची प्रांत में किया गया परिणाम स्वरूप ORI सबस्केल्स TETP सबस्केल्स और GHQ-12 के बीच पियर्रसन के सहसंबंध के अंतर्गत प्रतिभागियों ने एकीकरण के लाभों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने की सूचना दी।

बार्नी और अन्य. (2019) संस्थान की आत्म-प्रभावकारिता शिक्षण के लिए के लिए व्यक्तित्व शेयर और प्रेरणाओं की भूमिका में प्रस्तुत लेख के अध्ययन में शिक्षकों के मूल्य और उनकी आत्म-प्रभावकारिता के बीच संबंधी की जांच संबंधों की जांच की गई। तथा शिक्षक के लिए शिक्षकों की नियंत्रित और स्वायत्त प्रेरणाओं द्वारा ये संबंध किस हद तक नियंत्रित होते हैं का विश्लेषण करना इसका विशेष उद्देश्य था।

समस्या कथन

"उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों का आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन"

प्रस्तुत शोध में संक्रियात्मक परिभाषा-

समावेशी शिक्षा- समावेशी शिक्षा से तात्पर्य विद्यार्थियों के विभिन्न शारीरिक संवेगात्मक बौद्धिक आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक को ध्यान में रखकर शिक्षा के समानता के अधिकार के अंतर्गत सभी विद्यार्थियों को एक साथ शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराना है।

आत्म-प्रभावकारिता - आत्म-प्रभावकारिता से तात्पर्य किसी शिक्षक की विभिन्न परिस्थितियों को सफलता पूर्वक सामना करने पाठ्यक्रमों को व्यवस्थित करने तथा निष्पादित करने की उसकी क्षमता के बारे में है।

उच्च प्राथमिक विद्यालय- उच्च प्राथमिक विद्यालय से तात्पर्य कक्षा 6 से लेकर 8 तक के विद्यार्थियों से है।

अध्ययन के उद्देश्य

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक जेंडर, विद्यालय के प्रकार तथा क्षेत्रीय के संदर्भ में आत्म-प्रभावकारिता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना-

1- उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

2- उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

3- उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

जनसंख्या- प्रस्तुत शोध में जनसंख्या के रूप में उत्तर- प्रदेश राज्य के गाजीपुर जिले के उच्च प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है ।

न्यादर्श- उपयुक्त शोध में उत्तर प्रदेश राज्य के गाजीपुर जिले उच्च प्राथमिक विद्यालय के 100 अध्यापकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है ।

शोध उपागम एवं विधि- प्रस्तुत शोध में मात्रात्मक उपागम के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है।

शोध उपकरण- शोध के संकलन में स्वतः निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण की प्रक्रिया- प्रस्तुत शोध में समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता स्वःनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया जाएगा।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी - प्रयुक्त शोध अध्ययन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्य के संदर्भ में प्रतिशत, मध्यमान, टी-परीक्षण तथा एनोवा का प्रयोग किया जाएगा।

शोध परिसीमन- प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के गाजीपुर जिले के उच्च प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों तक सीमित किया जाएगा।

व्याख्या एवं विश्लेषण

परिकल्पना-1

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

तालिका 1

आयाम	अध्यापक	न्यादर्श (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (Std. Deviation)	मध्यमान का अन्तर (D)	मानक त्रुटि (σ D)	टी मान (t)
आत्म-प्रभावकारिता	पुरुष	57	.86	.074	.006	.016	.391
	महिला	43	.85	.088			

उपर्युक्त तालिका संख्या नंबर1 उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के आत्म-प्रभावकारिता से संबंधित है। शिक्षक का माध्यम.86 एवं मानक विचलन.074 तथा शिक्षिकाओं का मध्यमान.85 एवं मानक विचलन.088 है। स्वतंत्रता का अंश df =98 का टी- तालिका मूल्य.391 है। सार्थकता 0.05 पर1.98 है, जो की टी की गणना से प्राप्त मान से अधिक है। अतःपरिकल्पना उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की आत्म -प्रभावकारिता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के आत्म-प्रभावकारिता से प्राप्तांको का मध्यमान दर्शाया गया है।

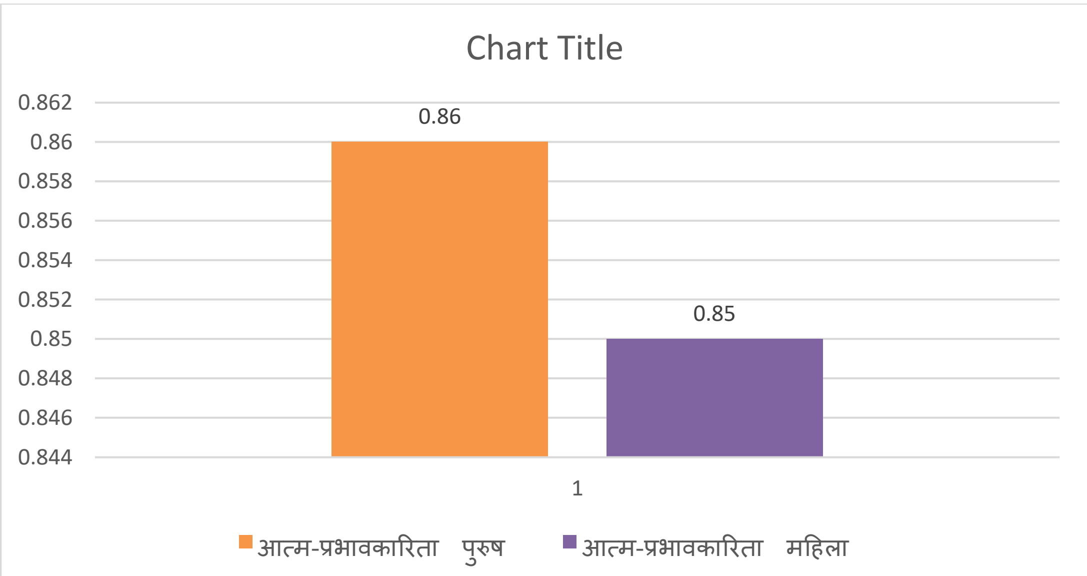

परिकल्पना-2

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

तालिका 2

आयाम	**अध्यापक**	**न्यादर्श (N)**	मध्यमान (Mean)	**मानक विचलन (Std. Deviation)**	मध्यमान का अन्तर (D)	**मानक त्रुटि (σ D)**	**टी मान (t)**
आत्म-प्रभावकारिता	**सरकारी**	61	.85	.085	.011	.016	.696
	गैर सरकारी	39	.84	.071			

उपर्युक्त तालिका संख्या नंबर 2 उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी शिक्षक तथा गैर सरकारी शिक्षक के आत्म-प्रभावकारिता से संबंधित है। सरकारी शिक्षक का माध्यम.85 एवं मानक विचलन.085 तथा गैर सरकारी शिक्षक का मध्यमान.85 एवं मानक विचलन.071 है। स्वतंत्रता का अंश df =98 का टी- तालिका मूल्य.696 है। सार्थकता 0.05 पर1.98 है, जो की टी की गणना से प्राप्त मान से अधिक है। अतःपरिकल्पना उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी शिक्षक तथा गैर सरकारी शिक्षक की आत्म -प्रभावकारिता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता से प्राप्तांको का मध्यमान दर्शाया गया है।

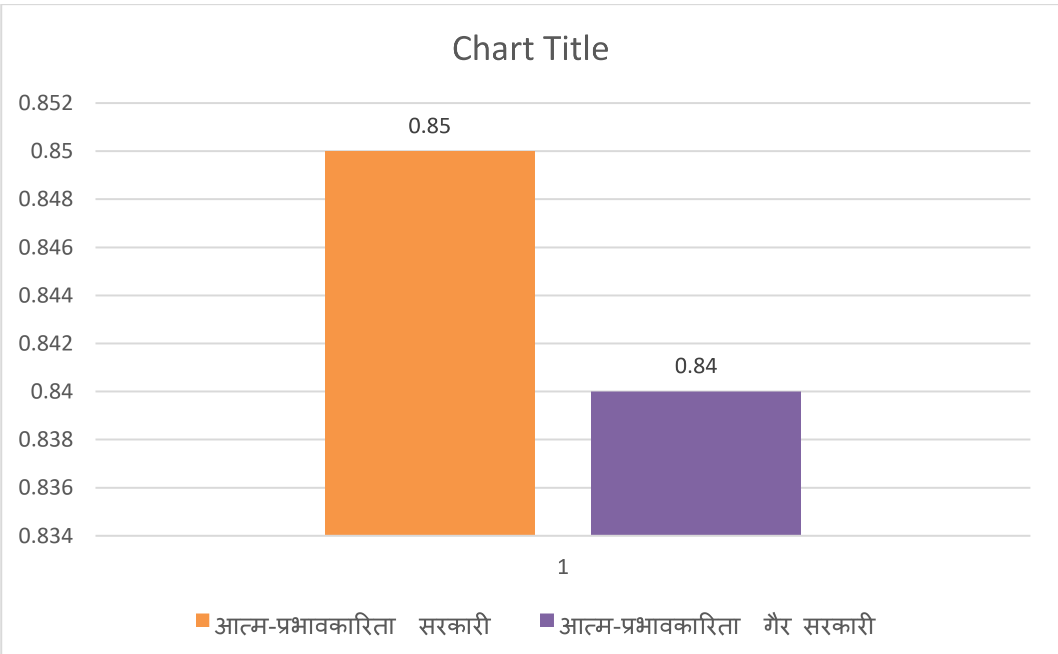

परिकल्पना-3

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता में कोई अंतर नहीं है।

तालिका 3

आयाम	अध्यापक	न्यादर्श (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (Std. Deviation)	मध्यमान का अन्तर (D)	मानक त्रुटि (σ D)	टी मान (t)
आत्म-प्रभावकारिता	शहरी	57	.87	.077	.040	.017	2.32
	ग्रामीण	43	.82	.096			

उपर्युक्त तालिका संख्या नंबर 3 उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी शिक्षक तथा ग्रामीण शिक्षक के आत्म-प्रभावकारिता से संबंधित है। शहरी शिक्षक का माध्यम.87 एवं मानक विचलन.077 तथा ग्रामीण शिक्षक का मध्यमान.82 एवं मानक विचलन.096 है। स्वतंत्रता का अंश df =98 का टी- तालिका मूल्य 2.32 है। सार्थकता 0.05 पर1.98 है, जो की टी की गणना से प्राप्त मान से कम है। अत:परिकल्पना उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी शिक्षक तथा ग्रामीण शिक्षक की आत्म -प्रभावकारिता में सार्थक अंतर है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता से प्राप्तांको का मध्यमान दर्शाया गया है।

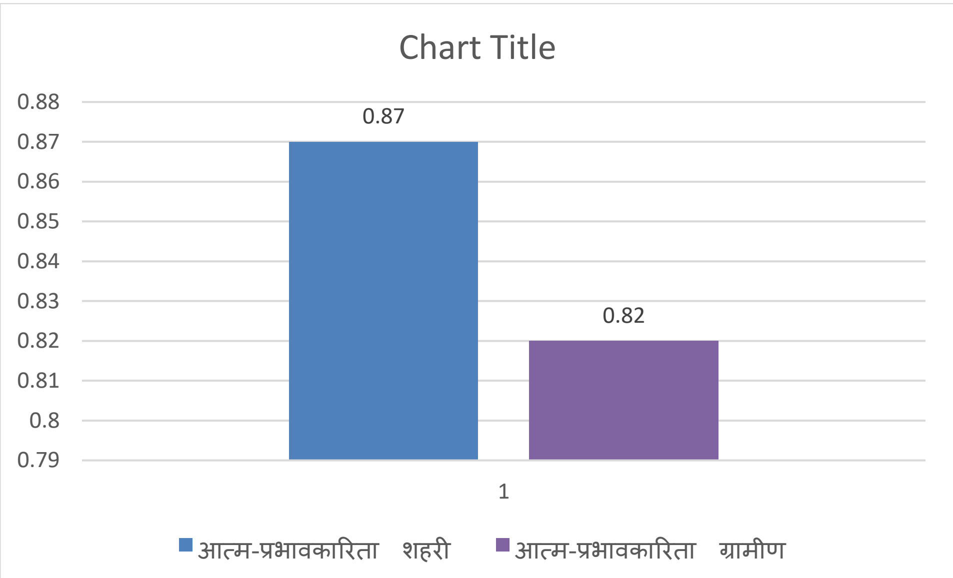

निष्कर्ष –

प्राप्त आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक विद्यालय स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों तथा शिक्षिकाओं एवं सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। प्राप्त निष्कर्ष से यह ज्ञात होता है कि शिक्षक महिला हो या पुरुष समावेशी शिक्षा के प्रति उनकी आत्म-प्रभावकारिता समान है तथा साथ ही सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों में भिन्य-भिन्य परिस्थितिओं में समावेशी शिक्षा के प्रति लगभग एक समान आत्म-प्रभावकारिता पाया गया। शेष प्राप्त आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक विद्यालय स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों के आत्म-प्रभावकारिता सार्थक अंतर है। समावेशी शिक्षा के प्रति ग्रामीण शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण, विशिष्ट विद्यार्थियों में रुचि लेना, समावेशन के प्रति जागरूकत करने आवश्यकता है। प्रभावकारी शिक्षक होने के लिए शिक्षकों के पास विशेष शिक्षण कौशल, शिक्षण सामग्री और मूल्यांकन के प्रभावी तरीके हों तो वह किसी भी प्रकार के विद्यार्थियों को शिक्षण प्रदान कर सकते हैं जो समावेशी शिक्षा के लिए अधिक उपयुक्त हो सकते हैं जिससे शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता प्रभावित हो सकें। आत्म-प्रभावकारिता गुणवत्तापूर्ण शिक्षा निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण कारक है। यदि शिक्षक सक्षम है और उसके पास उच्च स्तर की आत्म-प्रभावकारिता है, तो उसके छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि भी महत्वपूर्ण है। ऐसे शिक्षक राष्ट्र के लिए एक महान संपत्ति हैं क्योंकि वे छात्रों की पीढ़ियों को ढालते हैं जो एक जीवंत और समृद्ध भारत की स्थापना की दिशा में काम करेंगे और समानता और न्याय पर आधारित एक बेहतर दुनिया की भी स्थापना करेंगे।

संदर्भ :-

Barn, D., Danioni, F., & Benevene, P. (2019). The role of personality traits and motivations in teachers' self-efficacy for teaching. *Frontiers in Psychology, 10*, 1645. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2019.01645

Naidu, A. (2020). Inclusion, special needs and the reflective teacher. *Azim Premji University Learning Curve*. https://anuvadasamp

Nagase, A., Sunoda, T., & Fuchita, S. (2020). Teachers' attitudes toward inclusive education and teacher efficacy in relation to emotional distress among primary school teachers in Japan. *Frontiers in Education*. https://doi.org/10.3389/feduc.2020.570988

कुमार, एन. के. (2020). *माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की समस्यासमाधान योग्यता, उच्च स्तरीय सोच, आत्म-प्रभावकारिता और चेतनता पर मस्तिष्क आधारित अधिगम आव्यूह के प्रभाव का अध्ययन*. शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड विश्वविद्यालय), आगरा (उ. प्र.).

कुमार, पी. (2023). *माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की आत्म-प्रभावकारिता के विभिन्न स्तरों का व्यावसायिक दबाव एवं व्यावसायिक नीतिबोध के मध्य सहसम्बंध का अध्ययन. रीमार्किंग*, 7(11). आईएसएसएन 2394-0344. http://www.socialresearchfoundation.com/remarking.php

गुप्ता, एस. पी. (2015). *अनुसंधान संदर्शिका: संप्रत्यय, कार्य विधि एवं प्रविधि*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.

गुप्ता, एस. पी. (2018). *सांख्यिकी विधियां*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.

गोयल, एन., & भार्गव, एम. (2011). *शोध विधियाँ एवं सांख्यिकीय अनुप्रयोग*. आगरा: राखी प्रकाशन प्रा. लि.

तिवारी, ए., & कुमार, ए. (2020). *आत्म निर्धारण के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धांत पर आधारित समावेशी शिक्षा*.

पांडे, बी. के. (2012). *समावेशी शिक्षा प्रशासन*. भारतीय पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, लेखेश्वर कॉम्प्लेक्स, निकट अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (ऊ. प्र.). ISBN 978-93-81797-09-7

भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (पृ. सं. 41–42). नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय.

मंगल, एस. के. (2019). *व्यवहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियां*. दिल्ली: पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी). (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*. नई दिल्ली: एनसीईआरटी.

सिंह, ए. के. (2017). *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मलित भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग

पूजा यादव[*]
poojayadava1993@gmail.com

प्रो. नवीन चंद्र लोहनी[†]
nclohani@gmail.com

"भारत की सारी भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं। हिंदी ही सिर्फ राष्ट्रभाषा है, यह मानना भी एक खंडित सत्य होगा- केदारनाथ सिंह"[1]

भारत बहुभाषा-भाषी विशाल देश है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं है, वह व्यक्ति के व्यवहार की विलक्षणता एवं बुद्धिमत्ता की भी सूचक है। भारत का संविधान बुनियादी नियमों का दस्तावेज है। यह दस्तावेज समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बनाए रखने के ध्येय पर आधारित है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं का वर्णन किया गया है। यह भाषाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ, उसकी सांस्कृतिक अस्मिता, उसके सामाजिक संबंधों एवं उसकी राजनीतिक धुरियों के समन्वय का भी आधार हैं। हम जानते हैं कि भाषा एक निरंतर प्रवाहमान वस्तु है, वह परिस्थितियों, संदर्भों, संस्कृतियों और बदलते हुए भौगोलिक स्थितियों के समानांतर निरंतर परिवर्तित होती रहती है। भारतीय भाषाओं का आधुनिक स्वरूप भी विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौतिक परिवर्तन के फलस्वरुप गठित हुआ है। भाषा की यह निरंतरता, यह धरोहर, यह प्राचीनता हमें प्राप्त होती है उसकी लिपि के कारण। लिपि से ही भाषा को स्थायित्व प्राप्त होता है। वस्तुतः लिपि भाषा का ही प्रतिरूप है। लिपि की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति की तुलना में बहुत बाद में हुई, पर यह लिपि ही है जो किसी भाषा की समृद्धि और उसके व्यवहार क्षेत्र को दर्शाती है। भाषा और लिपि अन्योन्याश्रित होते हुए भी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं।

भारतीय संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है और साथ ही यह भी कहा गया है कि वह देवनागरी लिपि में लिखी जाएगी। संविधान के भाग- 17 'राजभाषा' अध्याय- 1 'संघ की भाषा' के अनुच्छेद- 343(1) के अनुसार "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।"[2] भारतीय

[*] **शोधार्थी, वरिष्ठ शोध अध्येता, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ**

[†] **वरिष्ठ आचार्य विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ**

संविधान में देवनागरी लिपि के अतिरिक्त किसी अन्य लिपि का जिक्र नहीं किया गया है। भाषा के तौर पर हिंदी की कार्यवाहक भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग व विभिन्न रूपों में भारतीय भाषाओं का प्रयोग वर्णित है। हिंदी के प्रचार एवं प्रसार पर बल दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 351 में इस विचार पर बल देते हुए कहा गया है कि “संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रचार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषा भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए इसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।”[3]

हिंदी भाषा के विकास का संबंध देवनागरी लिपि के विकास से जुड़ा हुआ है। हिंदी भाषा का समृद्ध होना, देवनागरी लिपि का समृद्ध होना है। हिंदी भाषा में आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करने व हिंदी के शब्द भंडार में संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करने पर हिंदी की समृद्धि तो सुनिश्चित होगी ही साथ ही देवनागरी लिपि भी समृद्ध होगी। परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में मूल देवनागरी लिपि से इतर कुछ प्रतीक चिह्न (विशेषक चिह्न) जोड़े गए हैं। इन प्रतीक चिह्नों को जोड़े जाने का मूल उद्देश्य देवनागरी लिप्यंतरण करते समय संबंधित भाषा की विशेष ध्वनियों का सही उच्चारण हो सके यह ध्येय रहा है।

परिवर्धित देवनागरी (विशेषक चिह्न)

संविधान की अष्टम अनुसूची में परिगणित अन्य भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए देवनागरी वर्णमाला में जो विशेषक चिह्न (Diacritical Marks) जोड़े गए, उनकी अद्यतन स्थिति यहाँ वर्णित है।

स्वर

ह्रस्व ए, ओ	◌ॆ (0946), ऎ (090E), ◌ॊ (094A), ऒ (0912)
कश्मीरी के विशिष्ट स्वर	◌ॖ (0956), ॶ (0976), ◌ॗ (0957), ॷ (0977), ◌ॅ (0945), ॲ (0972), ◌ॉ (0949), ऑ (09114)
संताली के विशिष्ट स्वर	◌ऻ (093B), ॳ (0973), ◌ॽ (097D)

• प्रयोक्ताओं की सुविधा के लिए कोष्ठकों में दी गई कुंजी संख्या यूनीकोड से साभार उद्धृत है। इससे संबंधित विस्तृत जानकारी वेबलिंक : http://unicode.org/charts/PDF/U0900.pdf पर उपलब्ध है।

व्यंजन

कश्मीरी चवर्ग	च़ छ़ ज़
सिंधी अंतः स्फोटी व्यंजन	ॻ ॼ ॾ ॿ
बांग्ला, असमिया	य़
तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड, मराठी एवं ओडिआ	ळ
तमिल ழ और मलयालम ഴ	ऴ
तमिल ன	ऩ
तमिल ற, मलयालम റ, तेलुगु ఱ, कन्नड ಱ	ऱ

देवनागरी में लिप्यंतण हेतु अन्य अपेक्षित जानकारी

भाषाविदों एवं भाषाविशेषज्ञों ने सर्वसम्मति से देवनागरी में भाषा-विशेष के लिप्यंतरण हेतु निम्नलिखित मार्गदर्शन भी दिया है :

तमिल ற்ற	ट्र
तमिल ன்ற	न्र
मलयालम ഺ	न्र

मैथिली : अऽ / कऽ / अथवा अ' / क' के स्थान पर यूनीकोड की (ऺ) 093A कुंजी संख्या का उपयोग कर वह **अऺ/कऺ** के रूप में लिखा जाए।

मणिपुरी : मणिपुरी की मौखिक भाषा में दो तरह के तान (tone) स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हैं परंतु इसकी लिपि 'मैती' में उसके लिए कोई तान (tone) अंकित नहीं किया जाता।

पंजाबी : इसी प्रकार पंजाबी भाषा भी तानयुक्त (tonal) भाषा है, लेकिन पंजाबी वर्तनी में उसका कोई तान अर्थात् विशेषक चिह्न अंकित नहीं किया जाता।

भाषा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। लिपि के आविष्कार से पूर्व भाषा का दायरा भावाभिव्यक्ति तक ही अधिक सीमित था। भाषा बोलने और सुनाने तक ही सीमित थी। विचार मंथन के लिए लिपि का होना आवश्यक था, लिपि द्वारा ही ज्ञान-विज्ञान संबंधी विचार दूर-दूर तक पहुंच सकते थे और भविष्य के लिए भी संचित किये जा सकते थे। विचारों एवं भावों के इस संचयन के लिए विश्व स्तर पर कई लिपियां प्रचलित हुईं जिनमें फारसी, अरबी, रोमन, देवनागरी, रूसी आदि प्रमुख हैं। भारत में भी अनेक

लिपियां प्रचलित रहीं, जिनमें देवनागरी, बांग्ला, तमिल, तेलुगू, मलयालम, गुरुमुखी आदि प्रमुख हैं। इन सभी लिपियों का विकास ब्राह्मी से हुआ। ब्राह्मी की दो शैलियाँ विकसित हुईं – उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी शैली को परवर्ती समय में गुप्त लिपि के नाम से जाना जाने लगा। जिससे कुटिल लिपि का विकास हुआ और कुटिल लिपि से ही देवनागरी लिपि का विकास हुआ। देवनागरी लिपि का प्रारंभ 1000 ई से माना जा सकता है। देवनागरी लिपि हिंदी भाषा के अतरिक्त संस्कृत, मराठी, कोंकणी, संताली, बोडो, भोजपुरी, नेपाली आदि भाषाओं की भी लिपि है।

वर्तमान में भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में 22 भाषाओं को 'राष्ट्रीय भाषा' का दर्जा दिया गया है। भारतीय संविधान में वर्णित 22 भाषाएँ और उनकी लिपियां निम्नवत हैं -

भाषा – लिपि

1. असमी - असमिया
2. ओडिआ - ओड़िआ
3. उर्दू - अरबी/फारसी
4. कन्नड़ - कन्नड़
5. कश्मीरी - पश्तो-अरबी
6. कोंकणी - देवनागरी
7. गुजराती - देवनागरी
8. तमिल - तमिल
9. तेलुगु - तेलुगु
10. नेपाली - देवनागरी
11. पंजाबी - गुरुमुखी
12. बांग्ला - बांग्ला
13. मणिपुरी - मैती
14. मराठी - देवनागरी
15. मलयालम - मलयालम
16. संस्कृत - देवनागरी
17. सिंधी - अरबी/देवनागरी
18. हिंदी - देवनागरी
19. संताली - ओल चिकि/देवनागरी
20. मैथिली - तिरुहुता/देवनागरी
21. बोडो - देवनागरी
22. डोगरी - देवनागरी"[5]

ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय भाषाओं के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त लिपि देवनागरी ही है। देवनागरी को राष्ट्रीय लिपि का दर्जा दिया जाए, इसके लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय (वर्तमान में केंद्रीय हिंदी संस्थान) द्वारा निरंतर प्रयास किया जा रहा है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा "देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" पुस्तिका का प्रकाशन इसी प्रयास की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। 22 राष्ट्रीय भाषाओं को एक सूत्र में पिरोने या और अधिक निकट लाने के लिए एक ऐसी लिपि की दरकार है जिसका आधार पूर्णतः वैज्ञानिक हो। लिपि शास्त्रियों के अनुसार वैज्ञानिक लिपि वह है जिसमें एकरूपता, निश्चिंत्तता, स्पष्टता, यंत्रयोग्यता, सुसाध्यता, सुंदरता तथा गत्यात्मकता आदि विशेषताएं हों। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर किसी लिपि की वैज्ञानिकता को परखा जा सकता है। देवनागरी लिपि की लोकप्रियता का प्रमुख कारण उसकी स्वाभाविकता और वैज्ञानिकता है। वह जैसी लिखी जाती है वैसे ही पढ़ी भी जाती है। प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न हैं और एक चिह्न से एक ही वर्ण या शब्द का बोध होता है। और साथ ही इसके अक्षरों के लिखित एवं मुद्रित रूप में भ्रम नहीं होता है। देवनागरी लिपि की इसी योग्यता को देखते हुए आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि- "हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी उसे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि देगी इसलिए मैं चाहता हूं कि हिंदुस्तान की समस्त भाषण देवनागरी लिपि में लिखे जाएँ।"[6]

अष्टम अनुसूची में सम्मिलित सभी राष्ट्रीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग किए जाने का मंतव्य अन्य भाषाओं से संबंधित लिपियों के हटाने के विचार से नहीं किया जा रहा है, यह विचार अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को स्वीकार किए जाने हेतु किया जा रहा है। जिससे एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र की भाषाओं से अपना परिचय आसानी से बढ़ा सकेंगे। इन्हीं आधारों पर देवनागरी लिपि की उपयोगिता भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने भी स्वीकार की थी। ज्ञातत्व है कि आठ राष्ट्रीय भाषाओं (कोंकणी, गुजराती, नेपाली, मराठी, संस्कृत, हिंदी, बोडो और डोगरी) के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग एकमात्र लिपि के तौर पर किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सिंधी, संताली और मैथिली भाषाएं ऐसी राष्ट्रीय भाषाएं हैं जो क्रमशः अरबी, ओल चिकि , तिरहुता के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी प्रयोग करती हैं। अन्य ग्यारह राष्ट्रीय भाषाओं की अपनी लिपियां हैं। पश्तो-अरबी(कश्मीरी), अरबी (सिंधी और उर्दू)और फारसी (उर्दू) लिपियाँ भारतेतर लिपियाँ है बाकी की लिपियां भारतीय लिपियाँ हैं। उर्दू भाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रचलन भारतीय क्षेत्र में आम है। उर्दू की शे'र और शा'यरी को व्यापकता देने में देवनागरी लिपि का अहम योगदान रहा है। रेख्ता जैसे ऑनलाइन मंच देवनागरी लिपि में उर्दू भाषा के प्रचार कोविस्तार दे रहे हैं। देवनागरी लिपि में मिर्ज़ा ग़ालिब का शे'र गौरतलब है –

"बाज़ीचा-ए-अतफ़ाल है दुनिया मिरे आगे
होता है शब-ओ-रोज़ तमाशा मिरे आगे"[7]

विदित है कि वर्तमान में उर्दू भाषा का देवनागरी लिपि में लिखा जाना सुलभ है। देवनागरी लिपि में उर्दू भाषा सुलभता से लिखी जा सके इसके लिए क़, ख़, ज़, फ़ वर्णों का फ़ारसी -अरबी से देवनागरी वर्णमाला में परिवर्धन किया गया। आज उर्दू की सभी ध्वनियों को देवनागरी लिपि में भी लिखा जा सकता है और लिखा भी जा रहा है, जो उर्दू भाषा को तो व्यापक क्षेत्र प्रदान कर ही रहा है, साथ ही देवनागरी लिपि को भी और अधिक समृद्ध बना रहा है।

असमी और मणिपुरी पूर्वोत्तर राज्यों में बोली जाने वाली राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। देवनागरी लिपि में इन भाषाओँ का लिप्यन्तरण भारत को भाषिक आधार पर और अधिक एकजुट करेगा। इसके लिए प्रयास लम्बे समय से किए जाते रहे हैं। गिरिजा कुमार माथुर की 'शब्द का जन्म' कविता का मणिपुरी में अनुवाद डॉ. हबोहल सिंह काङजम ने किया। मणिपुरी अनुवाद का देवनागरी लिपि में प्रकाशन 'भाषा' पत्रिका के जनवरी-फरवरी 1993, अंक- 3 में प्रकाशित हुआ। इस अंक में 'शब्द का जन्म' कविता का तीन भाषाओं में अनुवाद किया गया था- नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी। नेपाली और कोंकणी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का ही प्रयोग किया जाता है, मणिपुरी भाषा के लिए मैती लिपि का प्रयोग किया जाता है। मणिपुरी भाषा में 'शब्द का जन्म' कविता देवनागरी लिपि में प्रयुक्त होकर अपनी भाषा एवं क्षेत्र का फलक विस्तृत कर सकी। गिरिजा कुमार माथुर की 'शब्द का जन्म' कविता हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि में -

"जहाँ से यह नैन सुख आसमान नीला है
जहाँ से फिरकनी हवाएं बेफिक्र चलती हैं
जहां से यह चुपचाप चंद्रमा निकलता है
अनाहत जंगल की सुनसान स्याही में"[8]

शब्द का जन्म (वाहैगी होरक्फम्) मणिपुरी में अनुवाद व देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण इस प्रकार है -

"मीत पेन्ननीङाइ ओइरबा अतियागी शङबान्नबा
नुङशितमपीगुम्बा नुङशित्ना निङाइदना शित्लिनबा
थाजसिना तुमिन्ना थोक्लिबा
शुक्लबा उमङगी मीचिक्-मीराओ ताद्रबा अमम्बदा"[9]

देवनागरी लिपि में मणिपुरी भाषा को लिखा जाना निःसंदेह थोड़ा जटिल है, पर किसी भाषा की समस्त ध्वनियों के लिए वर्ण की उपलब्धता देवनागरी लिपि की समृद्धता को दर्शाती है। प्रयोग में लाकर ही किसी लिपि को जन सामान्य के लिए सहज एवं सरल बनाया जा सकता है। इस तरह के प्रयास प्रंशसनीय हैं।

ओड़िआ और बांग्ला पूर्वी राज्यों में बोली जाने वाली राष्ट्रीय भाषाएं हैं। भारतीय पूर्वी राज्यों में भाषा का प्रश्न अस्मिता का प्रश्न है। पश्चिम बंगाल एवं बांग्लादेश में बोली जाने वाली भाषा बांग्ला, बांग्ला अस्मिता का प्रतीक है। 1905 का बंग विभाजन हो या 1971 में बांग्लादेश का निर्माण, भाषा सदैव महत्वपूर्ण रही, उसने इस प्रदेश की अस्मिता में अपना अतुलनीय योगदान दिया। बांग्ला भाषा का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण भारतीय सम्पूर्ण भू-भाग को बांग्ला प्रदेश की अस्मिता से जोड़ेगा। विश्व कवि रविंद्र नाथ टैगोर जी ने मूलतः बांग्ला भाषा में रचनाएं की। उनकी रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद एवं लिप्यंतरण हुआ। बांग्लादेश का राष्ट्रगीत रविंद्रनाथ टैगोर जी ने बांग्ला भाषा में ही लिखा है और वह बांग्ला भाषा में ही गया भी जाता है।

"आमार सोनार बाङ्ला,
आमि तोमाय
भालबासि।
चिरदिन तोमार
आकाश,
तोमार बातास,
आमार प्राणे बाजाय
बाँशि"[10]

देवनागरी लिपि में बांग्ला भाषा का लिखा जाना सहज एवं सरल है। बांग्ला एवं असमिया भाषा की प्रत्येक ध्वनि देवनागरी रूप लिपि में समायोजित हो सके इसके लिए 'य' के नीचे नुक्ता वाले विशेषक चिह्न का समायोजन किया गया है। यह चिह्न यूनिकोड के मंगल फॉन्ट पर उपलब्ध नहीं है, यह तकनीकी अवरोध है जिन्हें समयानुसार हल किया जा सकता है। निःसंदेह देवनागरी लिपि इससे और अधिक समृद्ध और विकसित होगी। भाषा के तौर पर अन्य भाषाएं भी अपना फलक विस्तृत कर सकेंगी।

कश्मीरी, सिंधी और पंजाबी उत्तर भारतीय राज्यों में बोली जाने वाली भाषाएं हैं। कश्मीरी भाषा के लिए पश्तो-अरबी लिपि प्रचलित है। सिंधी भाषा को देवनागरी लिपि के साथ-साथ अरबी लिपि में भी लिखा जाता है। कश्मीरी भाषा का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण हो सके इसके लिए कश्मीरी भाषा के विशिष्ट स्वर देवनागरी लिपि में परिवर्धित किए गए हैं, साथ ही कश्मीरी च वर्ग जिसमें च, छ के नीचे नुक्ता और ज़ का भी

परिवर्धन किया गया है। सिंधी के अंत: स्फोटी व्यंजन ग, ज, ड और ब के नीचे _ का देवनागरी वर्णमाला में परिवर्धन किया गया है। ज्ञातत्व है कि देवनागरी वर्णमाला ही परिवर्धित देवनागरी के लिए मूल वर्णमाला है। भिन्न- भिन्न भाषाओँ के लिए किया गया ये परिवर्धन देवनागरी को राष्ट्रीय लिपि की ओर उन्मुख कर रहा है। पंजाबी भाषा का भाषा के तौर पर विस्तार क्षेत्र विस्तृत है। पंजाबी भाषा भारत के साथ-साथ प्रवास के कारण पश्चिम के देशों में भी बोली एवं समझी जाती है। पंजाबी भाषा की लोकप्रियता का एक आधार पंजाबी गाने भी हैं। पंजाबी भाषा की मूल लिपि गुरुमुखी है, लेकिन पंजाबी भाषा को देवनागरी लिपि में लिखे जाने के लिए न तो अतिरिक्त ध्वनियों की आवश्यकता पडती है और न ही अतिरिक्त श्रम की। पंजाबी भाषा के लिए देवनागरी लिपि सुगम्य है। इसके उदाहरण के लिए हम सुदीप बनर्जी की कविता आदमखोर ट्रक का पंजाबी अनुवाद व उसका देवनागरी लिप्यन्तरण देख सकते हैं-

"असबाब ढोते ट्रक
धीरे धीरे आदमखोर
पहले कुतर कुतर कर ड्राइवर को
फिर निगल लेता है
जन्मजात चुप्पी में
रमे एक बालक को
पंजाबी अनुवाद : फूलचंद मानव द्वारा –
समाण ढोंदे ट्रक
होली-हौली आदमखोर
पहिलां कुतर-कुतर के ड्राइवर नूँ
फेर निघार लैंदा है जमांदरु खामोशी विच
डुब्बे इक बच्चे नूँ"[11]

देवनागरी लिपि में पंजाबी भाषा का लिखा जाना व पढ़ा जाना दोनों ही सुगम प्रतीत होता है। पंजाबी भाषा के शब्दों का प्रयोग अन्य राष्ट्रीय भाषाओं में भी किया जा रहा है। निःसंदेह पंजाबी भाषा का गुरुमुखी के साथ-साथ देवनागरी लिपि में अनुप्रयोग पंजाबी भाषा के और विस्तृत फलक को निर्धारित करने में सहायक होगा।

दक्षिण भारतीय भाषाएं द्रविड़ परिवार का हिस्सा हैं। तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ की अपनी क्रमशः तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड लिपियां हैं। आजादी के बाद भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन प्रथमतः दक्षिण भारत में ही हुआ। एक ही भाषा परिवार की भाषा होते हुए भी तमिल भाषी एवं तेलुगु भाषी क्षेत्र विभाजित हुए। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाषाई अस्मिता के आधार पर यह क्षेत्र कितना जुड़ा और बंटा हुआ है। दक्षिण भारतीय भाषाओं की अपनी समृद्धि साहित्यिक व सांस्कृतिक परंपरा रही है। जिसने विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाई है। इस पहचान को दक्षिणी सिनेमा एवं शास्त्रीय संगीत परम्परा में भी दृष्टिगत किया जा सकता है। देवनागरी लिपि में इस परंपरा, विरासत एवं धरोहर की

उपलब्धता राष्ट्रीय स्तर पर एकजुटता का आधार बनेगी। दक्षिण भारतीय साहित्य का हिंदी एवं अन्य राष्ट्रीय भाषाओं में वृहद स्तर पर अनुवाद किया गया है साथ ही देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण भी किया गया है। वी. ए. केशवन् नंपूतिरि मलयालम भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। इनकी कविताओं का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया गया है। अनुवाद को पाठक को तक पहुंचाने में देवनागरी लिपि एक सुगम माध्यम बनी है। इनकी मलयालम भाषा में रचित राजघट्टिले पूक्कळ (राजघाट के फूल) का हिंदी अनुवाद और मलयालम भाषा का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण निम्नवत है -

“नतमस्तक खड़ा हूँ बापू-समाधि पर
अंजलि में फूल लिये "ॐ शान्तिः"
- नागरी लिप्यंतरण
कूप्पुकै प्पूमोट्टेन्ति नम्रशीर्षन् ञान् निलप्पू
बाप्पुविन् चितामण्डपत्तिल् "ॐ शान्तिः शान्तिः "[12]

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तमिल और मलयालम के लिए देवनागरी वर्णमाला में ‘ळ’ व ‘न के नीचे_’ वर्ण का परिवर्धन किया गया। विभिन्न भाषाओं के लिप्यंतरण के लिए देवनागरी लिपि को और अधिक परिवर्धित किए जाने की आवश्यकता है। किसी भी लिपि में परिवर्धन की गुंजाइश सदैव बनी रहती है, ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि तक की यात्रा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भी है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मलित भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग लिपि के स्तर पर विकासोन्मुख प्रक्रिया है। देवनागरी लिपि को अपनाने का मतलब अन्य भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करना नहीं है, बल्कि उपयोगिता की दृष्टि में रखते हुए एक सामान्य भारतीय लिपि के रूप में उसकी स्वीकृति मात्र है। इससे राष्ट्र भावनात्मक एवं विचारात्मक रूप से एकजुट हो पाएगा, जो किसी भी भाषा का ध्येय भी है। संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी राष्ट्रीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का अनुप्रयोग सर्वसुलभ हो इसके लिए देवनागरी लिपि को और अधिक आधुनिकीकृत, मानकीकृत और कंप्यूटरकृत होने की आवश्यकता है। देवनागरी लिपि के कई विशेषक चिह्न अभी यूनिकोड फॉन्ट पर उपलब्ध नहीं है, जिससे टंकण संबंधी असुविधा व चुनौतियाँ व्याप्त हैं। सुगम व मानक लिपियंतरण के लिए इन विशेषक चिह्नों के कंप्यूटरीकरण की आवश्यकता है। लिपियंतरण के महत्व को और अधिक व्याख्यित किए जाने की आवश्यकता है, साथ ही विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं के अनुवाद और लिपियंतरण की महत्ता के अलग-अलग स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि देवनागरी लिपि का यह अनुप्रयोग देवनागरी लिपि को और अधिक वैज्ञानिकता, संपूर्णता, कलात्मकता प्रदान करेगा, साथ ही उसे राष्ट्रीय दृष्टि से भावनात्मक एकता सुलभ बनाएगा, जिससे विभिन्न राष्ट्रीय भाषाएँ और अधिक निकट आ सकेंगी, लेकिन इसके लिए और अधिक प्रयत्न अवश्यभावी है।

संदर्भ :-

1. Hindwi. (2025). *Quotes by Kedarnath Singh*. Retrieved May 19, 2025, from https://www.hindwi.org/poets/kedarnath-singh-1/quotes
2. भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग. (2021). *भारत का संविधान (26 नवंबर 2021 को यथाविद्यमान)*. नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 203
3. भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग. (2021). *भारत का संविधान (26 नवंबर 2021 को यथाविद्यमान)*. नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 207
4. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग). (2019). *देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण* (संशोधित संस्करण). नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 8–9
5. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग). (2016). *देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण*. नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 2
6. गुप्त, कैलाशनाथ. (1998). संविधान द्वारा राष्ट्रलिपि : देवनागरी. *राजभाषा भारती*, 81(अप्रैल–जून). राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार. पृ. 6
7. Rekhta. (2025). *Couplets by Mirza Ghalib*. Retrieved May 19, 2025, from https://www.rekhta.org/poets/mirza-ghalib/couplets?lang=hi
8. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग). *भाषा: भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की पत्रिका*, 32(3). नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 31
9. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग). (n.d.). *भाषा: भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की पत्रिका*, 32(3). नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 32
10. LyricsTranslate. (2025). *Bangladeshi national anthem: Aamaar Sonaar Baanlaa*. Retrieved May 19, 2025, from https://lyricstranslate.com/en/bangladeshi-national-anthem-aamaar-sonaar-baanlaa-amar-sh.html-1
11. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग). (n.d.). *भाषा: भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की पत्रिका*, 32(3). नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 45
12. राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार. (1998). *राजभाषा भारती*, 81(अप्रैल–जून). नई दिल्ली: भारत सरकार. पृ. 42

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवन मूल्यों की समीक्षा

साहेबु देवशर्मा[1]
sahebudeb488@gmaill.com

Abstract (संक्षिप्तिका) :-

कविवर कालिदास सिद्ध सारस्वत युग-युग के कवि हैं। सम्पूर्ण मानवता के मनोमय कोष के आकर्षक एवं मनस्वी गायक हैं। कविवर कालिदास की काव्य सृष्टि में सत्य का यशोगान करती है तथा मानव जीवन का अर्थ स्पष्ट करती है, और एक-दूसरे के साथ संबंध स्थापित करने का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है, तथा मानव के चित्त को शुद्ध करती है और मानव जीवन को सार्थक बनाती है। कविवर कालिदास संस्कार और संस्कृति के शाश्वत मानवीय जीवनमूल्यों के उद्घोषक एवं प्रेरक कालजयी सिद्ध भावयोगी हैं। उनके काव्य-ग्रन्थों के सृजन में मानव जीवन, प्रकृति, पुरुष, समाज, शिक्षा, राजनीति, नारीत्व, पुरुषत्व इत्यादि समस्त विषयों से सम्बन्धित मानवीय जीवनमूल्यों की सशक्त, सार्थक एवं प्रेरक अभिव्यक्ति हुई है। मानव जीवन का सबसे प्रमुख या बड़ा लक्ष्य है पुनर्भव से मुक्ति और परमानन्द की उपलब्धि- **"ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः"।**[2] अर्थात् मानव जीवन की आसक्तियों का रस लेते हुए अन्तिम रूप से मानव को अनासक्त रहना है और आवागमन से मुक्ति पाने के उद्देश्य से मानव को मर्यादित, अनुशासित होना है। उपर्युक्त सूक्ति का कथन है कि सर्वशक्तिमान स्वयम्भू नीललोहित भगवान् शंकर समग्र जीवों का पुनर्जन्म दूर कर दें। इससे सुन्दर-सन्देश मानवमात्र के लिए और क्या हो सकता है।

Keywords (शब्द विशेष) :-

महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य का परिचय मूल्य क्या है, मूल्य शब्द का अर्थ, मूल्य की परिभाषाएँ, महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य से जुड़े कुछ मुख्य बिन्दु- परिवार, वर्णाश्रम, रीति-रिवाज, आचार-विचार, नारी एवं पुरुष आदि इस प्रकार है।

Subject- विषयवस्तु-

महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य का परिचय :- मानव अपने भावों को प्रकट करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन का प्रयोग करता है वह भाषा है। भाषा एक जीवन ज्योति है, जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करती है। यह भाषा ही वस्तुतः मानव शरीर में दैवी अंश है, जो इस सृष्टि में केवल मानव को ही प्राप्त है। इसी क्रम में कविवर कालिदास कहते हैं कि मानव एवं समाज की अन्त: प्रक्रिया की व्यवस्था करने में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य मानव के लिए विशेष उपयोगी है, क्योंकि मूल्य आदर्शों अथवा नीतियों की पुष्टि करते हुए मानव जीवन को अतिप्रभावशाली और प्रतिष्ठापूर्ण

[1] **शोधार्थी, संस्कृत विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

[2] कालिदास-ग्रन्थावली,हिन्दी-व्या-कार,पण्डित रामतेज शास्त्री,अभि, सप्तमोऽङ्कः, श्लोक सं-35. पृ. 470

बनाते हैं। मानव और समाज का जीवन जब प्रतिष्ठित तथा व्यवस्थित बनता है तो दिशाहीन वैयक्तिक एवं सामाजिक संघर्ष इत्यादि की सम्भावनाएँ क्षीण हो जाती है। तब फिर मानव एवं समाज के विकास की अनिश्चितता कम हो जाती है। वैयक्तिक मानवीय जीवनमूल्य मानव के व्यक्तित्व के नवनिर्माण में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह या योगदान करते हैं। व्यक्तित्व की सुन्दरता वैयक्तिक मानव जीवनमूल्यों पर आधारित होती है। मानव और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। मानव के बिना समाज तथा समाज के बिना मानव अधूरा है। वैयक्तिक जीवनमूल्य जब समाज में प्रतिष्ठा पाते हैं और सामाजिक पुष्टि के आधार पर जब वो मानव समाजोत्थान में उपयोगी बनते हैं। तब वही सामूहिक रूप से सामाजिक जीवनमूल्य का स्वरूप एवं व्यवहार धारण कर लेते हैं, और कहते हैं की जब मानव "अहं भाव" "वयं भाव" में समाहित हो जाता है, तब वही सामाजिक भाव बन जाता है। मानव के लिये सर्वोत्तम जीवन जीने के जो आदर्श समाज प्रस्तुत करता है, वे ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य है। मानव मूल्य समाज में मानवता को गरिमा प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्य वे मानक हैं जिनके द्वारा हम किसी वस्तु, व्यवहार, लक्ष्य, साधन, गुण आदि को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित ठहराते हैं। सामाजिक मानवीय मूल्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाये जाते हैं। देखा जाय तो इनकी संख्या असंख्य है। उदाहरण स्वरूप देखिए- खाने- पीने, उठने- बैठने, वस्त्र पहनने, गाने, लिखने, बोलने, स्वागत- सत्कार, मान- सम्मान आदि से जुड़े संबंधित सामाजिक मूल्य पाये जाते हैं। यह हमारे मानव समाज के व्यवहार के पथ प्रदर्शक हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य मानव व्यवहार के वे प्रतिमान हैं, जिन्हें समस्त मानव समाज कल्याणकारी समझता है तथा इनका उल्लंघन करना समाज का एक प्रकार अपमान करना समझा जाता है। सामाजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते रहते हैं, जिन्हें बिना किसी विचार या तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है। सामाजिक मूल्य महाकवि कालिदास के काव्यों में तथा अन्य साहित्य ग्रन्थ में भरे पड़े हैं। आवश्यकता है केवल उन्हें ग्रहण करने तथा समझने की, क्योंकि मूल्य हमें धैर्य, साहस एवं आत्मविश्वास प्रदान करते हैं। मानव की आधारभूत इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि में मानव मूल्यों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। सामाजिक मूल्य मानव समाज में एकता तथा संगठन व नियंत्रण बनाये रखते हैं। मानव और मानवीय मूल्य सर्वोपरि हैं। मानव मूल्यों का संबंध नैतिक विचार से है और नीति का घनिष्ठ संबंध साहित्य से है, और वर्तमान समय में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों का समाधान संस्कृति एवं साहित्य के द्वारा ही होता है। सामाजिक मूल्य ही मानव की एकता स्थापित करते हैं। सामाजिक एकता व सामाजिक मूल्यों से संबंधित श्लोक एवं सूक्तियाँ, अनेकों संस्कृत साहित्य में देखने को मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण तथा महाभारत में भरे पड़े हैं। किन्तु संस्कृत साहित्य में वर्णित सामाजिक मूल्य इस प्रकार के हैं- जैसे- सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, ज्ञान, तप, कर्म, सदाचार, त्याग, करुणा एवं सुख दु:ख में एकरूपता इत्यादि असंख्य मानव मूल्य देखने को मिलते हैं। इसी क्रम में महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों से जुड़े कुछ प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं- **१. परिवार, २. वर्णाश्रम, ३. रीति- रिवाज, ४. आचार- विचार, ५. नारी एवं पुरुष** आदि। इन सभी का विवेचन सुविस्तार निम्न प्रकार वर्णित है।

मूल्य क्या है :-

प्राचीन भारतीय साहित्य या शास्त्र में यद्यपि "मूल्य" शब्द का प्रयोग समीक्षा सिद्धान्त के रूप में उपलब्ध नहीं होता है। किन्तु "मूल्य" सम्बन्धी समग्र चिन्तन और विचार भारतीय साहित्य में मानव जीवन के चारों 'पुरुषार्थ' के अन्तर्गत हुआ है। पाश्चात्य समीक्षक मूल्य चिन्तन के विषय में पर्याप्त सजग रहे है। प्लेटो

महोदय का सिद्धान्त है कि मूल्य का आविर्भाव पश्चिम से हुआ था, तत्पश्चात् अरस्तू एवं स्टीरक का मत है कि एपीक्यूरियन लोगों से होता हुआ मूल्य चिन्तन दर्शन एवं साहित्य की नई भूमिकाओं तक मानव समाज में आया है।[3] " रिचर्डस् महोदय साहित्य समीक्षा के प्रतिमानों पर विचार करते हुए सर्वाधिक गंभीरता से अपना ध्यान मूल्यों पर ही केन्द्रित करते हुए कहते हैं- **To Setup As a Critic is To Setup As a Gublie of Valuel**[4] मानव एक प्रकार सामाजिक और अत्यन्त चिन्तनशील प्राणी है। वह मानव समाज का अभिन्न अंग होने के कारण जीवन-पर्यन्त सामाजिक मूल्यों के साथ जीवन यापन करता है। इसी क्रम में दूसरे कथन में कहा गया है कि अर्वाचीन अर्थप्रधान के युग में मूल्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। जैसे कि- दाम, कीमत, भाव मात्र इत्यादि। जो कि केवल किसी वस्तु के लेने-देने में प्रयुक्त होता है, जिनका आचरणात्मक जीवन मूल्यों से कोई संबंध नहीं है। वास्तव में मूल्य उसको कहते हैं- जो मानव जीवन को उसके उद्गम से उत्स तक ले जाने वाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को ही मानव मूल्य कहा गया है, और बताया गया है कि व्यक्ति के सद्गुण और सद्व्यवहर ही जीवन मूल्य हैं। मानव जीवन आदर्शों के पालन व आचरण से भी कीमती होता है। सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों के अन्तर्गत- धर्माचरण, सत्यवचन, परोपकार, दानशीलता, दया, निष्काम सेवा, त्याग शान्ति, अहिंसा, सौहार्द्र की भावना, करणीय और अकरणीय बोध इत्यादि समस्त गुण मानव के चित्त में आ जाते हैं।

मूल्य शब्द का अर्थ :-

"मूल्य" अपने आप में एक व्यापक शब्द है जो विभिन्न विचारों तथा अर्थों को व्यक्त करता है। **"मूल्य" शब्द संस्कृत के ' मूल् धातु ' के साथ यत् प्रत्यय** के संयोग बना है। इसका विशेषण परक अर्थ है- कीमत, दाम, मजदूरी, वेतन, पारिश्रमिक, उपयोगिता तथा जड़ से उखाड़ने योग्य, या खरीदने योग्य। इसी क्रम में मूल्य का संज्ञापरक अर्थ है- किसी वस्तु को खरीदने पर उसके बदले में दिया जाने वाला धन (दाम) कीमत (प्राइज) वह गुण या तत्व है जिसके कारण किसी वस्तु का महत्त्व या मान होता है"।[5] ' मूल्य ' शब्द अंग्रेजी में "वैल्यू" (Value) है, ग्रीक में "एक्सियस" जर्मन में "वैर्ट" और फ्रेंच में "वालेर" इस प्रकार इत्यादि नामों से जाना जाता है। इन सभी का लगभग एक जैसा ही भाव है- जो अच्छा है, सुन्दर है, महत्त्वपूर्ण है तथा उपयोगी है- वह मूल्य है।[6] इस प्रकार उपर्युक्त शाब्दिक अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु जो मानव समाज के लिए मूल्यवान है वह मूल्य है और जो जीवन के लिए मूल्यवान है वह जीवनमूल्य है। कुछ मूल्य वे भी हैं जो केवल जीवित रहने के लिए ही मूल्यवान हैं जैसे- वायु, जल, अन्न, आवास आदि ये मानव अस्तित्व के मूल्य हैं। जीवन के लिए जो कीमती हो उपयोगी हो, आदर्श हो, मूल्यवान हो, महत्वपूर्ण हो, लाभकारी हो, ग्रहण करने योग्य हो, आदि वह सब मूल्य ही है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि- सत्यं शिवं सुन्दरं और पुरुषार्थ चतुष्टय वे जीवन मूल्य हैं जिन पर सम्पूर्ण मानव जीवन के आदर्श एवं व्यावहारिक गुण प्रभावित होते हैं। इन सबका सुविस्तार वर्णन महाकवि कालिदास के काव्यों में भरपूर मात्रा में उपलब्ध होता है।

मूल्य की परिभाषाएँ :- कुछ विद्वानों ने मूल्य की परिभाषाएँ इस प्रकार दी है-

---

[3] कालिदास-साहित्य में जीवन मूल्य, डॉ. श्रीमती कमलेश माथुर. पृ. 30

[4] पूर्ववत्

[5] कालिदास-साहित्य में जीवन मूल्य, डॉ.श्रीमती कमलेश माथुर. पृ. 31

[6] पूर्ववत्

डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री के अनुसार- "सामान्यतः जीवन मूल्य व्यक्ति का वह आन्तरिक गुण है जो उसे विकास की ओर ले जाते हुए उसके जीवन को संरक्षित रखते हैं"।[7]

डॉ. शोभा दीक्षित के अनुसार- "जीवन में व्यक्ति की आत्म सन्तुष्टि जिन गुणों के द्वारा होती है, वे ही जीवन मूल्य हैं"।[8]

प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार- "व्यक्ति के सद्गुण और सद्व्यवहार ही जीवन मूल्य है"।[9]

थॉमस एवं जेननीकी के अनुसार- "मूल्य वह लक्ष्य है जिसके अन्तर्गत अन्तर्वस्तु तथा अर्थ एक सामाजिक समूह के सदस्य पहुँच सकते हैं"।[10]

परेटो के अनुसार- " परेटो ने मूल्यों को सामाजिक जीवन के अतर्क संगत पक्ष की अभिव्यक्ति माना है"।[11]

दुर्खीम के अनुसार- " दुर्खीम ने सामाजिक मूल्यों को आदर्श माना है इनके अनुसार मूल्यों की विवेचना एक सामाजिक तथ्य के रूप में (Social Face) ही करनी चाहिए"।[12]

डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार- "मूल्य वह है जिसके पीछे हम चलना चाहें, जिसे हम उपलब्धि के योग्य समझे, जिसे जीवन में महत्व दे सकें। मूल्य की धारणा लेखक की दृष्टि में, किसी वस्तु के सत्व और सत्य की तात्विक धारणा है, ऐसे सत्व या सार तत्व की जिससे वस्तु मूल्यवान बनती है"।[13]

"भारतीय दर्शन के अनुसार तो मोक्ष ही चरम मूल्य है"।[14] इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन मूल्य कोई बाहरी वस्तु नहीं है। व्यक्ति की अन्तरात्मा का आन्तरिक गुण है। जिसे दूसरे शब्दों में हम सद्गुण कहते हैं।

परिवार :-

कविवर कालिदास ने इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के वंश में परम्परागत सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों का वर्णन करते हुए कहा है कि- रघुवंश के सम्पूर्ण राजाओं का यह व्यक्तिगत मूल्य था कि वे वृद्धावस्था में अपने पुत्रसन्तान को समस्त राज्य का भार सौंपकर स्वयं वन में तपस्या करने चले जाते थे। महाराज दिलीप के इस जीवनमूल्य को व्यक्त करते हुए कविवर कालिदास का उक्त कथन इस प्रकार है-

अथ स विषयव्यावृतात्मा यथाविधि सूनवे नृपतिककुदं दत्त्वं यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥[15]

इसी क्रम में कविवर कालिदास ने इक्ष्वाकुवंश के जिस कुलव्रत सम्बन्धी मानवमूल्य की उद्घोषणा की है उसका उन्हें अत्यन्त दृढ़ आग्रह है। इसलिए कवि परिवार सम्बन्धी जीवनमूल्य के विषय में पुनः कहते हैं कि-

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः सन्निवृत्तं विजयिनमभिनन्द्य श्लाध्यजायासमेतं।

---

[7] हिन्दी शब्दकोष, डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री. पृ. 280
[8] साहित्य में जीवन मूल्य, डॉ.शोभा दीक्षित. पृ. 58
[9] संस्कृत के चार अध्याय. पृ. 372
[10] कालिदास-साहित्य में जीवन मूल्य, डॉ.श्रीमती कमलेश माथुर. पृ. 36
[11] पूर्ववत्
[12] पूर्ववत्
[13] पूर्ववत्-पृ-सं-37
[14] कालिदास-साहित्य में जीवन मूल्य, डॉ.श्रीमती कमलेश माथुर. पृ. 35
[15] रघुवंशम्, तृतीय:सर्ग:, श्लोक सं-70

तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभून्न हि सति कुलधर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥[16]

अर्थात् उपरोक्त श्लोक का कथन यह है कि- महाराज रघु को यह समाचार पहले ही मिल चुका था। इसलिए उन्होंने सुन्दरी स्त्री के साथ आये हुए विजयी अज का भव्य स्वागत किया। फिर अन्त में उन्हें कुटुम्ब का भार सौंपकर वे मोक्ष की साधना में लग गये। क्योंकि सूर्यवंशी राजाओं का यह नियम था कि जब पुत्र कुल का भार सम्भालने योग्य हो जाता था, तब सूर्यवंशी राजा घर में नहीं रहते थे। इस प्रकार उक्त श्लोक में कवि ने दिलीप के पुत्र महाराज रघु का कुलव्रत सम्बन्धी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य को दर्शाया है। तत्पश्चात् 'ककुस्थवंशजा' अर्थात् राजाओं के लिए कवि सदा यही कहना चाहता है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का कुलव्रत है वर्णाश्रम धर्म का पालन करना। इसी क्रम में प्रभु श्रीराम के दाम्पत्य जीवन की जो झाँकी हमें देखने को मिलती है वह दिलीप और दशरथ के दाम्पत्य जीवन से निराली है। उसमें मानव जीवन की समरसता विषमता के पार दाम्पत्य जीवन मूल्यों में प्रवाहित हुई है। प्रभु श्रीराम तथा माता सीता के दाम्पत्य जीवन में मानव को जो मूल्य मिला वह यह है कि वास्तव में पति-पत्नी का सम्बन्ध तन का नहीं जो कि मन का है। माता सीता दृढ़ता से कहती है कि अगले जन्म में भी राम ही मेरे भर्ता हों और उनसे मेरा कभी वियोग न हो-

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टरूर्ध्वम् प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।

भूयो यथा मे जनमान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।।[17]

इसके पश्चात् 17 सर्गों में विभाक्त कुमारसम्भव महाकाव्य में भी परिवार संबंधी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों का कवि ने वर्णन किया है। पार्वती जी के माता-पिता मैना और पर्वतराज हिमालय का दाम्पत्य जीवन अत्यधिक उदात्त था। अर्धांगिनी होने के कारण हिमालय अपनी पत्नी मैना की स्वीकृति लेकर ही कोई भी कार्य करते थे। सप्तर्षियों द्वारा शिवजी से पार्वती जी का विवाह- प्रस्ताव रखने पर पर्वतराज हिमालय स्वयं पत्नी की सहमति लेते हैं- **शैलः सम्पूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत।**

प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।।[18]

इस प्रकार उक्त कथन से स्पष्ट है कि पर्वतराज हिमालय और मैना का व्यक्तित्व पारिवारिक जीवनमूल्य से व्याप्त था भगवान् शिवजी और माता पार्वती का दाम्पत्य जीवन बड़ा आनंदमय था-

समदिवसनिशीथं सङ्गितस्तत्र शम्भोः शतमगमदूनां साग्रमेका निशेव।

न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः ॥[19]

मेघदूत को (खण्डकाव्य या गीतिकाव्य) के नाम से भी जाने जाते हैं। इस काव्य में भी कवि पारिवारिक प्रेम का आदर्श चित्र भी प्रस्तुत करता है। कुबेर के अनुचर यक्ष का अपनी पत्नी (स्त्री) के प्रति अगाध प्रेम है, अतः पत्नी वियोग से उसे महान् शोक, संताप एवं अत्यन्त कष्ट हुआ है। कुबेर के शाप के कारण

---

[16] रघुवंशम्, सप्तम:सर्गः, श्लोक सं-71

[17] रघुवंशम्, चतुर्दश:सर्गः, श्लोक सं-66

[18] कुमारसम्भवे, षष्ठःसर्गः, श्लोक सं-85

[19] कुमारसम्भवे, अष्टम:सर्गः, श्लोक सं-91

यक्ष का वियोग वर्षाऋतु के प्रारंभ में अधिक मार्मिक हो जाता है। महाकवि कालिदास ने आदर्श दाम्पत्य प्रेम का हृदय-हारी चित्र प्रस्तुत करने के लिए निर्व्याज यक्ष को मेघदूत का नायक बनाया है। उसका हृदय बड़ा उदार था उसमें प्रेम की इतनी तीव्रानुभूति है कि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हिंसा आदि विकार उनमें नहीं थी।

फिर इसी क्रम में सात अंक में विभक्त नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी परिवार संबंधी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य का आदर्श रूप महाकवि कालिदास ने व्यक्त किया है। राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के वैवाहिक सम्बन्धों के लिए सखियों की स्नेह हार्दिक शुभकामनाएँ गुरुजनों के मांगलिक आशीष वचन तथा सहचरों और परिचरों का स्वाभाविक अपनापन ये सम्पूर्ण वातावरण की दिव्य स्निग्धता महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। जो कि राजा दुष्यन्त तथा राजकुमारी शकुन्तला के दाम्पत्य जीवनमूल्य में स्नेह, सौहार्द्र, आत्मीयता, पवित्रता की मंदाकिनी प्रवाहित करती है। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का चतुर्थ अंक प्रमुख है। ये अंक इस पावनता से परिपूर्ण है, और इस अंक में भारतीय संस्कृति के सनातन धर्मियों मानव को जीवनमूल्य का संदेश देता है- **अर्थो हि कन्या परकीय एव तामाद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।**

जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥[20]

अर्थात् प्रस्तुत श्लोक के द्वारा कवि ने सनातन धर्मियों मानव को मानवीय जीवनमूल्य प्रतिष्ठित कराया है। कन्या सचमुच पराया धन होती है। आज उसे पति के घर भेजकर पिता को वैसी ही निश्चिन्तता अनुभव होती है, जैसे कि किसी की धरोहर लौटा दी गई हो। इसी क्रम में एक और आदर्शतम दाम्पत्य जीवनमूल्य परक श्लोक का उदाहरण देखिए- **शुश्रूषस्व गरून् करु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने**

भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं ग्रहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[21]

प्रस्तुत श्लोक का भावार्थ यह है कि ऋषि कण्व शकुन्तला को उपदेश देते हुए कहते हैं कि देखो तुम यहाँ से अपने ससुराल पहुंचकर या पति के घर पहुँचकर सभी गुरुजनों की सेवा करना, अपनी सपत्नियों के साथ सदैव प्रियसखी जैसा प्रेम या व्यवहार करना। अपने सेवकों के प्रति अत्यंत उदार रहना, तथा दास-दसियों को प्यार से रखना। अगर पति कदाचित् निरादर भी करे तो क्रोधवश में आकर के झगड़ा मत करना और कहते हैं कि भोगों को पाकर कभी भी अभिमान मत करना। जो स्त्रियाँ घर में इस प्रकार आचरण या व्यवहार करती है, वे ही सच्ची गृहिणी होती है तथा लक्ष्मी के पद को प्राप्त कर लेती है और इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ घर में दुःख उत्पन्न करती है। ऐसी आचरण वाली स्त्रियाँ अपने कुल की व्याधि होती है। उपरोक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी गुण मानवमूल्य के अंतर्गत आते हैं।

वर्णाश्रम :-

कविवर कालिदास के काव्यों में चारों वर्णव्यवस्था तथा चारों आश्रम व्यवस्था सम्बन्धी मानवीय जीवनमूल्यों का सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। चारों वर्णव्यवस्था और चारों आश्रम व्यवस्था ही भारतीय संस्कृति का प्रमुख मूलाधार है। इसलिए समाज के मूलाधार आश्रम- व्यवस्था को लेखक ने रघुवंशम् महाकाव्य के प्रारंभ में

[20] अभि, चतुर्थोऽङ्कः, श्लोक सं-22

[21] अभि, चतुर्थोऽङ्कः, श्लोक सं-18

ही कर दी है। बचपन के समय में विद्याध्ययन, यौवन में सांसारिक सुख- भोग, वार्धक्य में मुनिवृत्ति और अन्त में शरीरत्याग करना। अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास। यही तो है आर्य जाति की आश्रमव्यवस्था-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयेषिणाम्।

वार्धके मुनीवृत्तिनां योगेनान्ते तनुत्याजाम्।।[22]

अर्थात् इन्हीं सद्लक्षणों का विधिवत् पालन करने से समाज में सुख, शांति और सृमद्धि की वृद्धि हो सकती है और मानव मात्र का इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है। कविवर कालिदास ने अपने आदर्शतम नायक ' रघु ' के व्यक्तित्व में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम को भली-भांति दिखाया है-

अथोपनीतं विधिवद्विनपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।

अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।।[23]

इसी क्रम में कविवर कालिदास ने बड़े सुन्दर ढंग से गृहस्थाश्रम व्यवस्था का भव्य चित्रण किया है। जिस प्रकार मानव समाज की आधारभित्ति ' वर्णाश्रम ' व्यवस्था है। उसी प्रकार आश्रमों की आधारभित्ति ग्रहस्थाश्रम है। कविवर कालिदास ने ग्रहस्थाश्रम को सब आश्रमों में श्रेष्ठ आश्रम कहा है-'**कालो ह्ययं सङ्क्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते '।**[24]

चतुर्वर्ग में से अर्थ और काम की प्राप्ति भी इसी आश्रम से होती है। कविवर कालिदास इसे इहलोक के कल्याण के साथ पारलौकिक कल्याण का भी आधार मानते हैं। क्योंकि सन्त को देने वाला आश्रम यही है। इसी से मानव पितृगण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। महाराजा दिलीप के ग्रहस्थाश्रम व्यवस्था का चित्रण इस प्रकार है-

न संवतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्यहर्षितः।

ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितृणां मुमुचे स बन्धनात्।।[25]

17 सर्गों में विभक्त कुमारसम्भत्व महाकाव्य में भी गृहस्थाश्रम को सर्वोपरि महत्ता दी है। गुरुवशिष्ठ के सद्गृहस्थ का भगवान् शंकर पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसमें भी गृहस्थ बनने की भावना प्रबल हो उठी थी- **"तामगौरवभेदेन मुनींश्चापश्यदीश्वरः। स्त्रीपुमानित्यनास्वैषा वृत्तं हि महितं सताम्"।।**[26]

गृहस्थ जीवन का प्रमुख आधार है विवाह। अतः कवि कालिदास ने केवल काम या वासना की पूर्ति के लिए विवाह की व्यवस्था नहीं की है अपितु विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति माना है- **प्रजायैगृहमेधिनाम्।**[27]

गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में उत्तम है इसलिए महाकवि कालिदास जी ने गृहस्थाश्रम का ही अधिक विस्तृत वर्णन उद्धृत किया है। तत्पश्चात् संन्यास आश्रम का चित्रण भी कवि ने अनेक स्थलों पर व्याख्या किया है। महाराज रघु अपने पुत्र अज को राज्यभार सौंपकर सन्यास धारण करते हैं-

---

[22] रघुवंशम्, प्रथमःसर्गः, श्लोक सं-8

[23] रघुवंशम्, तृतीयःसर्गः, श्लोक सं-29

[24] रघुवंशम्, पञ्चमःसर्गः, श्लोक सं-10

[25] रघुवंशम्, तृतीयःसर्गः, श्लोक सं-20

[26] कुमारसम्भवे, षष्ठःसर्गः, श्लोक सं-12

[27] रघुवंशम्, प्रथमःसर्गः, श्लोक सं-7

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।

समुपास्यत पुत्रभोग्यता स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया।।[28]

इसी क्रम में कविवर कालिदास ने स्त्री को भी पुरुष के समान वानप्रस्थ और संन्यास की अधिकारिणी माना है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर कालिदास वर्ण व्यवस्था के पालन के घोर पक्षपाती थे। इस प्रकार कवि अपने काव्यों में वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था से जुड़े सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य को दर्शया है।

रीति रिवाज :-

रीति-रिवाज मानवीय समाज का मूल्य है। रीति रिवाज के विषय में कविवर कालिदास का यह मानवीय जीवनमूल्य है कि यज्ञोपवीत ग्रहण करना केवल मात्र ब्राह्मणों का ही जन्मजात अधिकार था। इसे जनेऊ नाम से भी पहचाने जाते थे- **"पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत्"।**[29] इसी क्रम में क्षत्रिय जाति का मुख्य कर्म युद्ध करना ही माना जाता था- क्षत्रिय वंश के कुल में आवश्यक सभी संस्कार होते थे। जैसा कि विक्रमोर्वशी नाटक में हमें देखने को मिलते हैं- **क्षत्रियकुलीनस्य जातकर्मादिविधानं।**[30]

कविवर कालिदास का रीति-रिवाज सम्बन्धी मूल्य यह भी था कि उस समय केवल विवाह तय करने के विषय में बातचीत करना कुल पुरोहित या किसी ब्राह्मण का ही काम था। उदाहरण के तौर पर हम ले सकते हैं कि 17 सर्गों में विभक्त कुमारसम्भव महाकाव्य में देवाधिदेव परमेश्वर शिवजी के साथ तथा माता पार्वती जी के विवाह का प्रस्ताव पर्वतराज हिमालय से सप्तर्षि रखते हैं-

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तुप्रतिपादिता।।[31]

तत्पश्चात् रानी इन्दुमती का विवाह स्वयंवर विधि से विधिपूर्वक हुआ था। कवि ने रघुवंश के सम्पूर्ण छः सर्गों में स्वयंवर विधि का वर्णन किया है, और उन्होंने स्वयं उस सर्ग का नाम ही इन्दुमती स्वयंवर सर्ग रखा है। इसके पश्चात् भगवान श्री राम तथा जानकी माता सीता का विवाह यद्यपि स्वयंवर विधि से नहीं हुआ था वह तो केवल परीक्षा विधि से ही हुई थी-

दृष्टसारमथ रूद्कार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत्।।[32]

किन्तु फिर भी मानव समाज इसे स्वयंवर ही कहते हैं। कविवर कालिदास केवल प्रजापत्य विवाह को ही उत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ विवाह मानते हैं। इसीलिए उन्होंने समस्त संसार के पिता भगवन् शंकर तथा माता पार्वती का विवाह इसी विधि से करवाया है। कविवर कालिदास का मानना है कि- गान्धर्व विवाह भारतीय संस्कृति में कभी मान्य रहा है इसलिए कवि ने उसका निरूपण अपने काव्यों में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। इस प्रकार उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कवि ने वैवाहिक रीति- रिवाजों में प्रजापत्य विवाह तथा भारतीय विवाह दीक्षा

---

[28] रघुवंशम्, अष्टम:सर्ग:, श्लोक सं-14

[29] रघुवंशम्, एकादश:सर्ग:, श्लोक सं-64

[30] विक्र-पृ-सं-128

[31] कुमारसम्भवे, षष्ठ:सर्ग:, श्लोक सं-76

[32] रघुवंशम्, एकादश:सर्ग:, श्लोक सं-47

पद्धति का भरपूर समर्थन किया है। इस प्रकार कवि ने मानव समाज में रीति रिवाज से सम्बन्धी मूल्य को दर्शाया है।

आचार- विचार :- कविवर कालिदास की आचार परम्परा में अतिथि सत्कार का बड़ा महत्व है। अतिथि को देवतुल्य के स्वरूप माना है- अतिथि देवोभव। अर्थात् इस युक्ति में कहा गया है कि अतिथि की पूजा को परम कर्तव्य तथा अवहेलना को महान् अपराध समझा गया है। इस प्रकार आचार सम्बन्धी मानवीय सामाजिक जीवनमूल्य से माता पार्वती जी अत्यधिक सम्पन्न हैं। जब महादेव भगवान् शंकर ब्रह्मचारी का वेश बनाकर अतिथि के रूप में माता पार्वती की परीक्षा लेने तपोवन प्रवेश करते हैं तो उसी बीच माता पार्वती जी ने उनका आतिथ्य सत्कार किया- **तमातिथेयी बहुमान पूर्वया सपर्यया प्रत्युदिदायपार्वती।**[33] पर्वतराज हिमालय भी इस मूल्य से युक्त होने के कारण वे स्वयं अतिथिओं का सत्कार किया करते थे। ऋषि-सप्तर्षि जब भगवान् शंकर के साथ माता पार्वती के पाणिग्रहण का प्रस्ताव लेकर हिमवान के घर पहुँचे तो हिमालय उन्हें दूर से ही आते हुए देखकर उनकी पूजा के लिए हाथ में अर्घ्य पात्र लेकर उनके पास पहुंच गये और पूरे विधि-विधान के अनुसार उनका आतिथ्य किया- **तानर्थ्यांनर्घ्यमादाय दूरात्युत्यद्ययौ गिरिः।**

नमयन्सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुन्धराम्।।[34]

रघुवंश महाकाव्य में आतिथ्य की भावना और भी अधिक जागरूक दिखाई देती है। तपस्वीजन भी इस भावना से युक्त थे। गुरुवशिष्ठ जी यद्यपि राजा दिलीप के गुरु थे लेकिन जब राजा दिलीप उनके आश्रम में पहुँचे तो मुनिवर ने उनका आतिथ्य सत्कार किया- **तमातिथ्यक्रिया शान्तरथक्षोभपरिश्रमम्।**[35]

सात अंक में विभक्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में भी हमें देखने को मिलता है कि अतिथि के पहुँचने पर आश्रम की कन्याएँ उनके भव्य स्वागत करने के लिए घबराती हुई उठती हैं-

हला शकुन्तले गच्छोटजं फलमिश्रमर्घमुपहर इदं पादोदकं भविष्यति।[36] इसी क्रम में कहा गया है कि- अतिथि का अनादर या तिरस्कार करना कितना बड़ा अपराध समझा जाता था, यह तो ऋषि दुर्वासा की घटना से स्पष्ट है- **विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।**

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।[37]

इस प्रकार कविवर कालिदास के काव्यों में आचार-विचार से सम्बन्धी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य हमें देखने को मिलते हैं।

नारीगत मनोवृत्ति :- कविवर कालिदास ने नारीगत मनोवृत्ति सम्बन्धी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों का स्वयं रचित काव्यों में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। भारतीय साहित्य जगत में विद्वानों ने कविवर कालिदास को ही प्रथम व्यक्ति माना है। कवि ने मानव मन की सूक्ष्म गतिविधियों का विधिवत जीवन्त चित्रण किया है। कविवर कालिदास का विचार यह है कि मानव जीवन में कुछ संस्कार ऐसे होते हैं कि- मानव के मन में बहुत गहरा प्रभाव पड़ते हैं। किन्तु समय चक्र के परिवर्तन से मानव यद्यपि यह बात अपने चेतन मन से उतार देती है।

---

[33] कुमारसम्भवे, पञ्चम:सर्गः, श्लोक सं-31

[34] कुमारसम्भवे, षष्ठो:सर्गः, श्लोक सं-50

[35] रघुवंशम्, प्रथम:सर्गः, श्लोक सं-58

[36] अभि, प्रथमोऽङ्कः,सूक्ति. पृ. 357

[37] अभि, चतुर्थोऽङ्कः, श्लोक सं-1

पर उसका प्रभाव मानव के अवचेतन मन पर बना रहता है, तथा अनुकूल परिस्थितियां पाकर मानव उभर आता है। कविवर कालिदास की यह धारणा है कि- मन के साथ जन्मान्तर का साहचर्य बना ही रहता है। यथा- "**मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्**"।[38]

इसी क्रम में कविवर कालिदास ने स्त्रीमनोगत विज्ञान का बड़ी बारीकी से निरीक्षण किया है, और वह कहते हैं कि स्त्रीजाति में प्रदर्शन और कौतुहल की भावना पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है जैसे-" **कुतुहलवानपि विसर्गशालीनः स्त्रीजनः**"।[39]

इसलिए प्रेम की अभिव्यक्ति में भी स्त्री वाचिक प्रगल्भता का परिचय नहीं देती है। उन्हें इसके लिए वाणी की अपेक्षा अपने विभ्रम का ही अधिक सहारा लेना पड़ता है। कवि की निम्न पंक्ति में ये भाव दर्शनीय है- "**स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु**"।[40] कविवर कालिदास का स्त्रीमनोवृत्ति सम्बन्धी यह भी जीवनमूल्य है कि प्रौढ़ाओं की अपेक्षा नई नवेलियों में प्रेमाभिव्यक्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसी क्रम में मालविकाग्निमित्र नाटक में भी मनोवृत्ति सम्बन्धी सामाजिक जीवनमूल्य अनेकों पंक्ति में हमें देखने को मिलते हैं- " **रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः**"।[41] कविवर कालिदास का पर्यवेक्षण कहता है कि जब स्त्री में प्रेमवासना या काम भावना अत्यन्त तीव्र हो जाती है तो फिर स्वयं उसके लिए उस पर नियंत्रण रखना अत्यन्त कष्टकर हो जाता है, और समय आने पर कभी- कभी तो वह इसकी तीव्रता में शालीनता का घेरा भी तोड़ देती है-" **अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः**"।[42] नारी जाति में सौन्दर्यपरक मनोभावना यह होती है कि वह अपने प्रियसुन्दरी को स्वयं की ओर आकर्षित कर सके-"**स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेशः**"।[43] कविवर कालिदास का यह मूल्य है कि यही वह प्रेरणादायक है जो कि समस्त स्त्रीजाति को अधिक से अधिक सजने के लिए प्रेरित करती है-"**प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता**"।[44] तत्पश्चात् कवि कहते हैं कि- नारी जाति में पुरुषों की अपेक्षा चतुरता एवं व्यवहार कुशलता का अंश अधिक मात्रा में पाया जाता है- "**निसर्गनिपुणाः स्त्रियः**"।[45]

सामान्यतः यह देखा जाता है कि पुरुष पात्र की अपेक्षा स्त्री में प्रेम और समर्पण की भावना अत्यधिक मात्रा में होती है। उसी प्रकार प्रियजन वियोग की व्यथा भी पुरुष की अपेक्षा नारी में ही अधिक तीव्र होती है-" **इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुः सहानि**"।[46]

इस प्रकार कविवर कालिदास ने स्वयं रचित काव्यों में स्त्रीमनोवृत्ति सम्बन्धी जीवनमूल्य स्पष्ट किया है।

पुरुषगत मनोवृत्ति :- कविवर कालिदास ने पुरुषों के मानसिक वृत्ति सम्बन्धी जीवनमूल्यों का अपने काव्यों में सुविस्तार ढंग से उद्धृत किया है।

---

[38] रघुवंशम्, सप्तम:सर्गः, श्लोक सं-15
[39] मालविकाग्निमित्रम्, चतुर्थोऽङ्कः,सूक्ति. पृ. 624
[40] मेघदूत,पूर्वमेघः, श्लोक सं-30
[41] मालविकाग्निमित्रम्, चतुर्थोऽङ्कः,सूक्ति. पृ. 628
[42] रघुवंशम्, द्वादश:सर्गः, श्लोक सं-33
[43] कुमारसम्भवे, सप्तम:सर्गः, श्लोक सं-22
[44] कुमारसम्भवे, पञ्चम:सर्गः, श्लोक सं-1
[45] मालविकाग्निमित्रम्, तृतीयोऽङ्कः,सूक्ति. पृ. 597
[46] अभि, चतुर्थोऽङ्कः, श्लोक सं-3

प्रेमालाभ के सम्बन्ध में कवि ने पुरुष को स्त्री की अपेक्षा अस्थिर एवं अविश्वसनीय कहा है जैसा- कि मालविकाग्निमित्र नाटक के निम्न पंक्ति में इरावती राजा अग्निमित्र के विषय में कहती है- "**अविश्वसनीयहृदयो ऽसि"।**[47] इसी क्रम में कविवर कालिदास कहते हैं कि- स्त्री जहाँ एक बार अपना हृदय किसी को दे देती है। तब स्त्री सदा अन्य के लिए हो जाती है। फिर पुरुष और स्त्री का प्रेम जन्म-जन्मान्तर तक बना रहता है। इसके पश्चात् अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के नायक पराक्रमी राजा दुष्यन्त का मनोवृत्ति सम्बन्धी मूल्य है कि किसी की विवाहिता पत्नी को वासनात्मक दृष्टि से देखना अत्यन्त निंदनीय है।

इस प्रकार कविवर कालिदास ने पुरुष पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण से पुरुषगत मनोवृत्ति सम्बन्धी सामाजिक मानवीय जीवनमूल्य को व्यक्त किया है।

उपसंहार (Conclusion) :-

उपसंहार में हम कह सकते हैं की महाकवि कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवन मूल्य सर्वोपरि हैं। मानव जीवन के प्रमुख आधार स्तम्भ है तथा प्रेरणास्त्रोत है। सामाजिक मूल्य मानव से लेकर विश्व के जीवन में मार्गदर्शक एवं आदर्श हैं, सिद्धान्त है और श्रेष्ठ जीवन जीने का नीतिपरक तत्व है। जो कुछ मानव जीवन के लिए वरेण्य है, उपयोगी है, सार्थक है, हितपूर्ण है वह सब मूल्य के अन्तर्गत आ जाता है। कविवर कालिदास के काव्यों में सामाजिक मानवीय जीवनमूल्यों के दृष्टांत तो इतने हैं कि सबका समावेश यहाँ पर देना सम्भव नहीं है। किन्तु फिर भी उपर्युक्त उद्धरणों के माध्यम से यह स्पष्ट है कि कविवर कालिदास ने अपने काव्यों तथा नाटकों के पात्रों के माध्यम से मानव को सामाजिक मूल्यों की ओर प्रेरित किया है। आज भी इन मूल्यों की उतनी ही आवश्यकता एवं उपयोगिता है जितनी कि कविकुलगुरु कालिदास के युग में थी। मानव के व्यक्तित्व एवं समाज के विकास के लिए जिन मूल्यों की आज आवश्यकता है। उनके विषय में कविवर कालिदास ने अत्यन्त सरलता के साथ अपने काव्यों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है, और कहते हैं कि सामाजिक मूल्य जितने मजबूत होंगे उतना ही समाज और राष्ट्र मजबूत होगा। मेरा इस शोध आलेख के मूल में यही दृष्टिकोण है कि मानव और सामाजिक मूल्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ :-

1. कालिदास. (2023). *कालिदास-ग्रन्थावली* (हिन्दी व्याख्याकार पण्डित रामतेज शास्त्री, सम्पा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी). वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
2. कालिदास. (2021). *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* (व्याख्याकार डॉ. सुधाकर मालवीय). वाराणसी: चौखम्बा कृष्णदास अकादमी.
3. माथुर, कमलेश. (2015). *कालिदास साहित्य में जीवन मूल्य*. दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स.
4. कालिदास. (2017). *रघुवंशमहाकाव्यम्* (हिन्दी व्याख्याकार पण्डित लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य, सम्पा. पण्डित रामचन्द्र झा व्याकरणाचार्य). वाराणसी: चौखम्बा कृष्णदास अकादमी.
5. कालिदास. (2007). *मेघदूतम्* (व्याख्याकार सुधीरकुमार पाठक). वाराणसी: सपना अशोक प्रकाशन.
6. कालिदास. (2020). *रघुवंशम्* (व्याख्याकार डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी). वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती

[47] मालविकाग्निमित्रम्, तृतीयोऽङ्कः, सूक्ति. पृ. 612

Vikshit Bharat 2047: Resonating with the Voice of Youth - Inspired by Hindi movie "Laapataa Ladies" on OTT

PRERNNA MISHRA* **DR. ADITYA KUMAR MISHRA†**
prernnamishra@gmail.com **adityaiimc22@gmail.com**

Abstract

This research paper explores the strategic vision of the casual Hindi movie "Laapataa Ladies" play on the OTT platform to ensure "Vikshit Bharat 2047" ensures India's development and inclusion in the independence centenary era. The film offers a perspective on the challenges and leadership culture currently facing women in India, providing an inspiring context to understand and amplify the aspirations and voices of India's youth. Analyzing key themes of gender equality, empowerment and change in the film industry, this article explores how these narratives interact with young women's visions of India's future. By analyzing the quality of audience responses and key points, we contribute to the debate on India's development strategy by taking into account how people stand. How does the cinematic structure impact and influence young people's desires? This study aims to understand how mass media play an important role in creating and responding to expectations of change in the country's success plans from 2047 onwards.

Summary:

Inspired by the work of Lapatta women to achieve prosperity in India in 2047, the country's youth are creating the narrative of Vikshit Bharat. This vision shows the important role of youth in the development of the country's future. India can leverage the huge potential it has from its youth by prioritizing investing in education, skill development and creating an inclusive environment. Vikshit Bharat is not just a distant dream; It requires determination, especially from young people. Stakeholder engagement is essential to achieving a prosperous future for all; Justice and equality are promoted and recognize the wishes of future generations.

---

* **Research Scholar, Department of Journalism & Mass Communication, Rama University, Kanpur, Uttar Pradesh**

† **Co Writer, Assistant Professor, Indian Institute of Mass Communication, Amravati, Maharashtra**

Keywords:

Young India, Government future scheme, OTT Platform, Development, Inspiration, Education, Women Empowerment.

Research Objective:

(1) To highlight the role of youth in the context of 'Viksit Bharat 2047' through the film 'Laapataa Ladies'.

(2) Understanding the attitude of Indian youth parallel to the film 'Laapataa Ladies'

Hypothesis:

1- Today the society inspires young women to strive to fulfill their dreams which is in line with the goals of 'Viksit Bharat 2047'.

2- In line with the aspirations of the country, films like 'Laapataa Ladies' are also acting as a catalyst for the youth to move forward on the path of development.

Research Methodology:

In this research study, content analysis 'research method' has been used to critically study and analyze the aspects of youth like education, desire to move ahead, marriage etc. in specially selected film 'Laapataa Ladies.

Introduction:

The voice of youth in India's journey of growth and progress is full of passion, determination and ambition. As we think about Vikshit Bharat 2047, a vision for India's development, it is important to express the voices of youth who are at the forefront of change. We took inspiration from the Indian film *Laapataa Ladies*, released on the OTT platform, to explore the balance between the struggle and triumph depicted in the film and the dream and hope of experience of India's youth. Through this article, we will examine the details of Vikshit Bharat 2047 as told by young people and intertwine their vision with the story of the *Laapataa Ladies*.

What is Vikshit Bharat @2047 ?

"Vikshit Bharat 2047" expresses India's vision of development and prosperity by 2047. Sustainability and culture are important. Therefore, the concept of "Vikshit Bharat 2047" not only encapsulates the concept of economic development but also embodies the broad goals of national pride, sovereignty and inclusive development.

About film "*Laapataa Ladies"*

Deepak, portrayed as a genuinely good-hearted man, challenges societal norms by treating his wife, Phool, with utmost respect and love. Despite cultural expectations, neither he nor his family exhibit patriarchal attitudes. Deepak's innocence and efforts to woo Phool without taking her for granted make their relationship refreshing. However, their lives take an unexpected turn during a journey home, where Deepak mistakenly boards the train with Jaya instead of Phool.

Jaya's silence about the mix-up initially suggests innocence, but it later becomes evident that she intentionally withheld the truth. Meanwhile, Phool finds herself lost and vulnerable, surrounded by lecherous men at the train station. Through the kindness of strangers like Chotu and Manju Mai, Phool finds temporary shelter and support, highlighting the impact of compassion amidst adversity.

As the story unfolds, it's revealed that Jaya's engagement to Pradeep, a manipulative and abusive man, was solely for dowry. Jaya harbors dreams of pursuing education and independence, which she sees as unattainable within her marriage. Despite her initial deception, her desire for freedom becomes evident when she intentionally remains silent about the mistaken identity.

The narrative intertwines with the involvement of police officer Shyam Manohar, whose initially corrupt actions evolve into a pursuit of justice. Through his investigation, Jaya's lies are uncovered, and her true intentions come to light. Manohar's integrity contrasts sharply with Pradeep's abusive behavior, highlighting themes of morality and justice.

Phool's journey of self-discovery mirrors Jaya's quest for autonomy. Empowered by the kindness of strangers, Phool finds independence and a sense of identity beyond her role as a wife. Similarly, Jaya's aspirations for education and freedom symbolize a longing for self-determination.

As the story reaches its climax, Manohar's intervention prevents Jaya from being returned to her abusive husband. Instead, she's given the opportunity to pursue her dreams of education. Deepak's unwavering support for Phool and his willingness to help Jaya further emphasize themes of compassion and empathy.

In the end, Jaya's pursuit of education and Phool's newfound independence signify triumph over societal expectations. Manohar's decision to support Jaya's autonomy reflects a commitment to justice and morality. Deepak's unwavering love for Phool remains a beacon of hope amidst the challenges faced by the characters, ultimately

portraying the power of compassion and resilience in the face of adversity. (IMDB PLOT)

Not only are the story and acting great, but the dialogue in *Laapataa Ladies* steals the show. Directed by Kiran Rao, the film found a new life after its OTT release on Netflix. This heart-warming movie, which tells the story of two brides who got lost on the same train, will leave you with beautiful memories and words that will never be forgotten. I want to share my favorite scenes from the movie *Laapataa Ladies*, especially Chhaya Kadam aka Manju Maai, whose jokes are effective.

1. "My husband and son would get drunk and beat me up. And then they would say, 'A man who loves you has the right to hit you. One day, I exercised my right as well."
2. "Being happy on your own is the toughest thing, Phool. But yes, once you master it, no one can bother you."
3. "For centuries, women in this country have been duped. This con is known as 'a respectable girl.”
4. "There's nothing shameful in being a fool. But feeling proud of being a fool is shameful."
5. "Women can farm and cook. We can give birth to children and raise them. If you think about it, women don't really need men at all. But if women figured this out, men would be screwed, wouldn't they?"

Role of women in Vikshit Bharat @ 2047

In Vikshit Bharat 2047, women play pivotal roles across various sectors:

1. **Economic Empowerment**- Women are making a positive impact on the economy through entrepreneurship, business participation and business practices.
2. **Leadership and Governance**- Women hold important positions in politics, government, corporate organizations and civil society and provide inclusive decision-making.
3. **Education and Skill Development**: Women have equal access to quality education and professional development, allowing them to pursue more career opportunities.
4. **Health and Well-being:** Women's health and well-being are prioritized through access to comprehensive healthcare services and reproductive rights.

5. **Environmental Stewardship:** Women participate in environmental protection and use their knowledge for sustainable management.
6. **Social and Cultural Transformation:** Women challenge gender norms and stereotypes and contribute to the diversity and richness of society and culture.

Overall, women empowerment is essential to achieve the Vikshit Bharat 2047 vision and promote sustainable development, social justice and growth.

Understanding the Youth Perspective:

The cast of The *Laapataa Ladies* embarks on a journey of self-discovery, struggle and empowerment that touches on the aspirations and struggles of India's youth. Similarly, India's youth represents different kinds of dreams, aspirations and challenges. Their voices echo on the streets of schools, startups, rural communities, urban areas and digital platforms, reflecting the vision of an inclusive, prosperous Vikshit Bharat and prosperity for all

Economic Empowerment and Innovation

In "*Laapataa Ladies*" we witness the heroes achieve financial independence and overcome social obstacles to realize their business dreams. This reflects the aspirations of India's youth, who want India to be a land of economic prosperity, innovation and economic prosperity for all. The famous dialogue "Hum kisi se kam nahi" ("We are no less than others") resonates as it sheds light on the way young people challenge traditional norms and strengthen finance.

Just as the characters in the film overcome the obstacles to starting their own business, young people break down traditional boundaries and make new changes in every aspect of life. They are the creators of change, disrupting traditional businesses and creating a new era of economic growth. The dialogue "Sapne dekhna koi buri baat nahi hoti, bura toh yeh hota hai ki unhe pura karne ki Himmat nahi hoti" ("dreams are not bad things, bad things do not have the courage to realize them") is included in India's path Vikshit Bharat 2047 to youth entrepreneurship and innovation.

Social Justice and Inclusion:

At the heart of *Laapataa Ladies* is the quest for justice and unity; The heroes struggle to take control and regain their honor. Similarly, young people dream of a Vikshit Bharat where everyone has equal rights and opportunities regardless of gender, caste, religion or socio-economic background. The dialogue "Hum ladkiyan Sirf apne sapno ko hi nahi, Poore sheher ko badalne nikli hain" ("We girls are not only chasing our dreams,

we also want to change the whole city") resonated with the men while advocating. For gender equality. , LGBTQ+ rights and justice.

In the film, we see characters dealing with sexuality and patriarchal culture, as well as young people struggling with conflict and advocating for a larger society. They are aware that real progress can only be achieved when everyone has the power to realize their potential, regardless of social obstacles. The dialogue "Yeh jahan humein jeene nahi deta, wahi humein jeena sikhaata hai" ("This world does not let us live, but teaches us to live") shows the youth's patience and determination to solve problems and struggles.

Environmental Sustainability:

As the heroes of *Laapataa Ladies* begin their journey of self-discovery, they reconnect with nature and the environment, finding comfort and strength in its embrace. Likewise, the youth of India are aware of the importance of environmental sustainability in the future development of the country. They envision Vikshit Bharat, the focus of conservation, renewable energy and security, for a healthier, safer tomorrow.

In the film, we see the characters bonding with their environment, just as young people are leaders protecting India's natural heritage and fighting climate change. They advocate for policies that promote sustainable development, reduce carbon emissions and protect biodiversity. The dialogue "Paudhe lagane se pehle humein apne sapno ko pura karna hoga" ("We must know our dreams before planting trees") demonstrates the youth's commitment to the environmental conservation tour as part of the component of India's Vikshit Bharat 2047 journey.

Cultural Renaissance:

Laapataa Ladies celebrates the resilience and spirit of Indian women, inspired by their rich heritage and culture. Similarly, young people think of Vikshit Bharat, which celebrates diversity, arts and crafts along with modern expressions. The dialogue "Yeh desh aur yeh sheher humara hai, humein hi isse bachana hoga" ("This country and this city are ours, and we must be the ones to save it") shows the youth's sense of ownership and commitment towards preserving Indian culture. legacy Sense of responsibility.

In the film, we see the characters embrace their cultural heritage and reinvent themselves as young people challenge Indian cultural heritage and support indigenous arts and crafts. They recognize the importance of preserving and promoting India's diverse cultures and promoting mutual understanding and appreciation of diversity. The dialogue "Yeh sheher, yeh log, yeh mohalla, sab apne hain" ("This city, these people,

this community, it all belongs to us") resonates with young people who strive to preserve and celebrate India's Cultural Diversity.

Challenges and Opportunities:

The journey to Vikshit Bharat 2047 is full of challenges, just like the struggle depicted in The *Laapataa Ladies*. But just as the characters in the film draw strength from unity and empowerment, young people see these challenges as opportunities for growth, innovation, and integration. Unemployment, poor infrastructure, unsustainable labor and social culture are among the many obstacles they face in their journey to develop India.

To solve these problems, young people are advocating for policies, investment in education, skills development, infrastructure and social support. They called for a concerted effort to address the root causes of inequality, poverty and environmental degradation and ensure that no one is left behind on India's streets.

In the story of The *Laapataa Ladies* we see echoes of the aspirations and struggles of India's youth. While the heroes rediscover their lost dreams and aspirations, the youth take back their rightful place as the future architects of India. They are the driving force behind the Vikshit Bharat 2047 vision of inclusive, prosperous and prosperous for all.

As we move forward on the difficult path of the 21st century, let's listen to the voice of youth and embrace their vision for a better tomorrow. Let's work together to build a country where everyone has the opportunity to realize their potential and where justice, equality and dignity are not just a goal but a reality. Vikshit Bharat is not just a distant dream; It is a debate that requires the cooperation of all citizens. Let us work together to build our confidence, be considerate, unite and support a future worthy of the aspirations of our youth.

Despite these obstacles, India's youth remain determined and are inspired by the resilience and determination depicted in The *Laapataa Ladies*. While the characters in the film face social norms and poverty, young people use their strength, creativity and purpose to overcome obstacles and pave the way to the future.

Unemployment, inadequate housing, bureaucratic interference and social discontent can create serious problems, but young people see these as opportunities for growth, development, innovation and integration. They refuse to represent difficulties; instead, they are agents of change; they call for policy reforms, investment in education, skills development, infrastructure development and social support.

To tackle unemployment, young people advocate for policies that encourage job creation, skills development and entrepreneurship. They believe in leveraging India's public profit by providing quality education and training opportunities to equip young people with the skills they will need for their future careers. They also emphasized the importance of creating the right environment for startups and small businesses to grow, leading to economic growth and job creation.

To address this gap, young people are calling for investment in key sectors such as transport, health, education and digital connectivity. They advocate the development of new infrastructure to bridge the urban-rural divide and ensure equal access to basic services for all citizens. They also emphasized the need for sustainable development and the ability to withstand the challenges posed by climate change and urbanization.

Bureaucratic red tape and corruption are obstacles to success that young people are determined to overcome. They demand transparency, accountability and efficiency in governance, advocating reforms that will simplify administrative processes and eliminate corruption at all levels. Through the use of technology and digital platforms, they aim to promote electronic government and public participation in decision-making processes, thereby increasing trust in government.

Social discrimination, including sexism, family discord and religious intolerance, continues to harm Indian society. However, young people are at the forefront of fighting these grievances and advocating for unity and equality. They advocate for gender equality, LGBTQ+ rights, and social justice, working to create a society where everyone is respected and valued.

There are many opportunities for youth to drive change and shape India's future. They use their voices, networks and platforms to advocate for policies and initiatives based on the Vikshit Bharat 2047 vision.

Conclusion:

In the spirit of *Laapataa Ladies*, India's youth are reinventing their actions and creating the narrative of Vikshit Bharat 2047. Opportunities to shape the path of life in the future.

As we march towards Vikshit Bharat 2047, let us listen to the voices of our youth and encourage them to lead the way. By investing in their education, developing their skills and creating an enabling environment for their participation, we can harness the full potential of remittances from India's population and support the prosperity and progress of the country.

Vikshit Bharat is not just a distant dream; It is a vision that requires the cooperation and determination of all stakeholders, especially young people. Let us work together to build a country where everyone has the opportunity to achieve prosperity, where justice, equality and dignity are promoted, and where the aspirations of the people of the next generation are met.

Reference-

Film Companion Local. (2024, May 9). *Why are people loving Laapataa Ladies?* [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=8ME87nVfu5s

Gupta, S. (2024, March 1). *Laapataa Ladies movie review: A delightful film delivers its message loud and clear*. The Indian Express. https://indianexpress.com/article/entertainment/movie-review/laapataa-ladies-movie-review-kiran-rao-delightful-film-delivers-message-loud-and-clear-9189447/

Kumar, A. (2024, February 29). *Laapataa Ladies movie review: Kiran Rao lifts the veil on patriarchy with a sharp social satire*. The Hindu. https://www.thehindu.com/entertainment/movies/laapataa-ladies-movie-review-kiran-rao-lifts-the-veil-on-patriarchy-with-a-sharp-social-satire/article67898882.ece

Rawal Kukreja, M. (2024, February 28). *Laapataa Ladies review: Kiran Rao weaves content, comedy and conversations in this simplistic, heartwarming drama*. Hindustan Times. https://www.hindustantimes.com/entertainment/bollywood/laapataa-ladies-review-kiran-rao-weaves-content-comedy-and-conversations-in-this-simplistic-heartwarming-drama-101709123398547.html

Mathur, A. (2024, February 28). *Laapataa Ladies movie review: Kiran Rao aces her comeback with fun, sharp, moving film made even better by its young actors*. DNA. https://www.dnaindia.com/bollywood/report-laapataa-ladies-movie-review-kiran-rao-aces-her-comeback-sparsh-srivastava-pratiba-ranta-nitanshi-goel-3079718

प्रतिरोध की संस्कृति, भाषा एवं औपनिवेशिक मनोविज्ञान: फ्रांज फैनन की दृष्टि से

योगेश कुमार जांगिड़*

yogeshjangid872@rediffmail.com

शोध सारांश

20वीं सदी के वि-उपनिवेशीकरण आंदोलन में फ्रांसीसी उपनिवेश अल्जीरिया के फ्रांज फ़ैनन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वि-उपनिवेशिकरण के दौर में हिंसा के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतिरोध को स्थापित करने में फ़ैनन अग्रामी माने जाते हैं। ब्लैक 'नीग्रों' के साथ हुए दुर्व्यवहार और भाषाई हिंसा ने फ़ैनन को मूल-निवासियों के साथ संघर्ष में खड़ा किया। औपनिवेशिक लोगों के मन और मस्तिष्क में बनें भय एवं डर को हिंसा के माध्यम से खत्म कर मूल-निवासियों में स्व-अस्तित्व की भावना का विकास एवं मुक्ति की परिकल्पना की। वि-उपनिवेशीकरण में संस्कृति को औपनिवेशिक ताक़त से लड़ने का साधन समझा जाता है जो मुक्ति की ओर अग्रेषित होती है। इस शोध आलेख में फ़ैनन के प्रतिरोध की संस्कृति, हिंसा, भाषा और वि-उपनिवेशीकरण का विश्लेषण किया है।

***बीज शब्द**: प्रतिरोध, भाषा, औपनिवेशीकरण-विउपनिवेशीकरण, हिंसा, मुक्ति और फ़ैनन।*

प्रस्तावना :

वि-उपनिवेशीकरण के दौर में एशिया-अफ्रीकाई देश पाश्च्यात औपनिवेशिक शक्तियों से अपनी संस्कृति, परंपरा, भाषा, सभ्यता और स्व-अस्तित्व के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। ऐसे ही अफ्रीकी देश फ्रांसीसी उपनिवेश अल्जीरिया के फ्रांज फ़ैनन नीग्रो पर किए जा रहे शोषण एवं अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं। अल्बर्ट कामू, ज्याँक देरीडा, चे ग्वेरा, बंटू स्टेपन बीको के विचारों से प्रभावित फ़ैनन यूरोप केंद्रित सांस्कृतिक वर्चस्ववाद एवं स्व-घोषित सभ्य सभ्यता को वैचारिक और सैद्धांतिक चुनौती देने का कार्य करते हैं। तीसरी दुनिया के लोग सीधे अधिवासियों से सवाल कर पाएं, इसके लिए फ़ैनन हिंसा को अनिवार्य घटक मानते हैं। वे कहते हैं कि जहाँ क्रांति होगी, वहाँ हिंसा होगी और उसी हिंसा से मनुष्य का पुनर्निर्माण होगा। यह पुनर्निर्माण नई चेतना और मानवता के सृजन की ओर इशारा करता है, इतिहास में अंतिम से प्रथम बनने का रक्तरंजित सफ़र दिखाई देता है। यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियां जिस दमनकारी हिंसा से शासन करते हैं, उससे भी अधिक गति से इन शक्तियों को हिंसा का सामना करना पड़ता है। फ्रांसीसी उपनिवेश के दमन से अल्जीरिया के लोग सचेत होने लगते हैं, भूख और गरीबी से सिमटे लोग यह समझते देर नहीं लगाते हैं कि राज्य की हिंसा का सामना अधिक ताक़त और संसाधनों से करना होगा। जे. पी. सार्त्र लिखते हैं कि, 'औपनिवेशिक शासन द्वारा हिंसा गुलामों को दूर रखने के लिए नहीं बल्कि इनके अमानवीयकरण के लिए होती है, ताकि मूल-निवासियों की संस्कृति, परंपरा, भाषा और संवाद को ख़त्म किया जा सकें।' [1]ऐसे में मूल-

* **शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

निवासियों के फिर से स्व-शासन के लिए हिंसा अनिवार्य घटक हो जाता है। यह ही हिंसा व्यक्ति में नैतिक साहस और आत्म-स्वाभिमान पैदा करती है। मुक्ति और अस्मिता को लेकर अल्जीरिया के क़बीलाई समूह में सामूहिक भावना का विकास होता है जो दमनकारी हिंसा के प्रतिउत्तर में हिंसा को ही अपना हथियार बना लेते हैं। मानवता पर विभिन्न सिद्धांत की रचना करने वाला यूरोपीय उपनिवेश हर जगह हिंसक रहा है और आर्थिक एवं सांस्कृतिक शोषण के ज़रिए उपनिवेशों की स्थापना कर मूल-निवासियों के ज्ञान के स्रोतों को समाप्त करता रहा है। फ़ैनन राष्ट्रीय प्रतिरोध के माध्यम से उपनिवेशित लोगों को वापस उपक्रम देने का प्रतीक मानते हैं, यह प्रतीक सामूहिकता का है जो राष्ट्रीय आत्मनिर्णय से जुड़ा है।

प्रतिरोध की संस्कृति :

वि-उपनिवेशीकरण के दौर में अलग-अलग प्रतिरोध के तरीके निकल कर आएं। देसी-कबीलाई समूहों ने अपने-अपने तरीक़े से सामूहिक एकता और समाज को संगठित रखने का काम किया। अफ़्रीकन प्रतिरोध में हिंसात्मक कारवाई अधिक देखने को मिलती है। फ़ैनन कहते हैं कि उपनिवेश की बर्बरता ने मूल-निवासियों को प्रतिउत्तर के साधन के रूप में हिंसा के चयन पर मजबूर किया। औपनिवेशिक प्रतिरोध और सवाल-जवाब का एकमात्र तरीका हिंसा ही मानी गई। कैब्राल और फ़ैनन के अनुसार संस्कृति, "कोई सौंदर्यबोध वाली कलाकृति नहीं है, बल्कि इतिहास की अभिव्यक्ति, मुक्ति का आधार और प्रभुत्व का विरोध करने का एक साधन है। मूलतः संस्कृति विध्वंसकारी है।"[2] मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और भाषाई शोषण के ज़रिए फ्रांसीसी औपनिवेशिक शक्ति नीग्रो को असभ्य और हीन बनाते हैं। जब मूल-निवासी के मन में डर-भय होता है तो वह अपने अंदर की आग को सहजें रखता है और एक अच्छे अवसर की तलाश में रहता है ताकि अधिवासी के स्थान पर अपने को स्थापित कर सकें। फ़ैनन अपनी पुस्तक 'The Wretched of the Earth' के तीसरे अध्याय 'राष्ट्रीय संस्कृति पर' (On Notional Culture) की शुरुआत में लिखते हैं कि 'अफ़्रीकी क्रान्ति में भाग लेने के लिए क्रांतिकारी गीत लिखना ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए आपको लोगों के साथ मिलकर क्रांति का स्वरूप तैयार करना होगा, और यदि आप इसे लोगों के साथ मिलकर तैयार करेंगे, तो गीत स्वयं ही आ जाएंगे।'[3]

प्रसिद्ध अफ़्रीकी लेखक अमिल्कर कैब्राल ने 1970 के अपने न्यूयार्क वक्तव्य में कहा कि, 'उपनिवेशवादी शासक, शोषण और दमन पर टिके रहने के लिए संस्कृति का उपयोग एक अस्त्र की तरह करते हैं। वे उपनिवेश की जनता के एक हिस्से को अपनी औपनिवेशिक भाषा और संस्कृति में समाहित करके गुलाम बुद्धिजीवियों का एक समूह तैयार करते हैं जो स्वयं को अपने ही देश की जनता के मुकाबले सांस्कृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ समझने लगते हैं, अपने देशवासियों के सांस्कृतिक मूल्यों की या तो अवहेलना करने लगते हैं या उन्हें हिकारत की दृष्टि से देखने लगते हैं।'[4] अफ़्रीकी देशों ने औपनिवेशिक प्रभुत्व के बावजूद मूल-निवासियों में सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान पैदा किया। औपनिवेशिक परिस्थितियाँ राष्ट्रीय संस्कृति को लगभग हर क्षेत्र में प्रवेश से रोकने की कोशिश करती है। औपनिवेशिक प्रभुत्व अपने ढांचे में न तो सांस्कृतिक प्रस्थान आने देता है और न ही राष्ट्रीय संस्कृति में किसी भी तरह का नया परिवर्तन, '...क्योंकि यह पूर्ण और सर्वग्रासी है, बहुत जल्दी पराजित लोगों के सांस्कृतिक जीवन को नाटकीय ढंग से बाधित कर देता है। यह सांस्कृतिक विनाश संभव होता है राष्ट्रीय वास्तविकता के निषेध के द्वारा, उपनिवेशवादी शक्ति द्वारा लागू किए गए नए क़ानूनी संबंधों से, मूल निवासियों और उनकी परंपराओं को हटा कर उन्हें औपनिवेशिक समाज के बाहरी इलाक़ों में धकेलने से, ज़मीन छीन लेने से और स्त्री-पुरुषों को व्यवस्थित रूप से दास बना लेने से।'[5]

फ़ैनन कहते हैं कि, 'औपनिवेशिक प्रभुत्व में राष्ट्रीय संस्कृति हमेशा संघर्ष का मैदान होती है। इसकी व्यवस्थित हत्या की कोशिश की जाती है, जिससे यह संस्कृति गुप्त और छिपी हुई बन जाती है। यह गुप्त संस्कृति उपनिवेशी शक्ति के खिलाफ प्रतिक्रिया में दिखाई देती है, जो राष्ट्र की आत्मा से निष्ठा और समर्पण का प्रतीक होती है। इस तरह पारंपरिक रूपों का अनुसरण करना पहले से ही नाश का संकेत है, लेकिन यह राष्ट्र की भावना को थामे रहने का प्रदर्शन भी है।'[6] मूल-निवासी और अधिवासी के बीच का संघर्ष न तो राष्ट्रीय संस्कृति को छोड़ता है और न ही उसकी सामग्रियों को छोड़ता है। फ़ैनन कहते हैं कि इस संघर्ष में केवल उपनिवेशवाद का ही अंत नहीं होता है बल्कि उपनिवेशित मनुष्य का भी अंत होता है। इस संघर्ष के उद्देश्यों से एक नई तरीके की मानवता जाहिर होती है जिसकी अपनी अलग परिभाषा स्वयं और दूसरों के लिए होती है। ऐसे संघर्ष का मूल्य संस्कृति के विकास और मूल्यों की अधिकतम पूर्ति करता है और ताकि नए राष्ट्र में सांस्कृतिक अनिश्चितता न उत्पन्न हो सकें।

औपनिवेशिक मनोविज्ञान :

फ़ैनन औपनिवेशिक दुनिया को दो अलग-अलग भागों में देखते हैं, एक वह जहाँ से प्रभुत्व स्थापित किया जाता है, अधिवासी की दुनिया, दूसरी शोषित एवं संघर्षशील मूल-निवासियों की दुनिया। दोनों की अपनी अलग-अलग विशिष्टता होती है। मूल-निवासी की दुनिया अधिवासी की दुनिया से एक़दम अलग होती है, बंदूकों से शासन, तंग गलियां-सटे मकान, बदहाल सड़कें-कच्चे मकान, भूख से तड़पते मूल-निवासी जिन्हें असभ्य नीग्रो का तगमा दिया गया है। इन दोनों की दुनिया का पर्याप्त अंतर ही मूलनिवासियों के मन में घृणा और द्वेष पैदा करता है। फ़ैनन पश्चिम के मानसिक ढाँचें में गहराई से उतरे हुए नीग्रो, मूल-निवासी और उपनिवेशित की भययुक्त छवि में हस्तक्षेप करते हैं, वे स्व-अस्तित्व और पहचान को पुनः प्राप्त करने की आशा मूल-निवासियों को प्रदान करते हैं। फ्रांसीसी उपनिवेश ने अल्जीरिया के उपनिवेशित लोगों का जो मनोवैज्ञानिक शोषण किया, सांस्कृतिक नस्लवाद और वर्चस्ववाद के ख़िलाफ़ एकजुट करते हुए नई संवादात्मक संस्कृति पर जोर देते हैं। ब्लैक स्किन व्हाइट मास्क में फ़ैनन लिखते हैं कि, 'हे मेरे शरीर, मुझे सदैव प्रश्न करने वाला मनुष्य बनाना!' (O my body, make of me always a men who questions!)[7]

फ़ैनन अपनी पुस्तक ब्लैक स्किन व्हाइट मास्क के परिचय में ऐमे सेसायर को उद्दृत करते हैं कि, "मैं उन लाखों लोगों की बात कर रहा हूँ, जिसके अंदर बड़ी कुशलतापूर्वक भय, हीनता, घबराहट, दस्ता, निराशा और अपमान का इंजेक्शन लगा दिया गया है।" फ़ैनन कहते हैं कि, 'औपनिवेशिक काल में, जब सशस्त्र प्रतिरोध अनुपस्थित हो, तब हानिकारक उद्दीपनों का संचय एक सीमा पार कर लेता है, और मूलनिवासी आत्मरक्षा की प्रवृत्तियाँ टूट जाती हैं, तब वे खुद को मानसिक चिकित्सालयों में पाते हैं। इस प्रकार सफल उपनिवेशवाद के "शांत काल" में भी उत्पीड़न से पैदा हुई मानसिक बीमारियाँ बार-बार सामने आती हैं। आज राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम, जो पिछले सात वर्षों से अल्जीरियाई जनता चला रही है, मानसिक विकारों के लिए उपजाऊ भूमि बन चुका है। अल्जीरियाई लोगों के लिए यह युद्ध पूर्ण युद्ध है।'[8]

उपनिवेश के समय मूल-निवासियों की सबसे बड़ी खोज यह थी कि उन्होंने अपने अस्तित्व को पहचाना, उन्हें लगा कि उनके पास भी अधिवासियों जैसा हृदय और मस्तिष्क है, मेरी भी दो आँखें उन्हीं जैसी है, उनके जैसी ही चमड़ी है तो फिर मैं दूसरों के नियंत्रण में क्यों हूँ? यह समय मूल-निवासियों का अपने आपको निर्मित करने का समय माना जाता है। मूल-निवासी यह नहीं जनता कि कैसे अश्वेत व्यक्ति के अंदर

इतनी हीनता कहाँ से आ जाती है। फ़ैनन कहते हैं कि जब अश्वेत व्यक्ति से उन्हें नज़रें मिलानी होती है तो उन्हें अपरिचित बोझ सा महसूस होता है, वास्तविक दुनिया ने उनके दावों को चुनौती दी, श्वेत लोगों के सामने अश्वेत की शारीरिक चेतना एक नकारात्मक क्रिया के रूप में देखी गई, जिसे तीसरे व्यक्ति की चेतना कहाँ गया। फ़ैनन कहते हैं कि कई वर्षों से अमानवीयकरण के लिए कुछ प्रयोगशालाएं सीरम बनाने का काम कर रही है, ताकि नए शोध के ज़रिए दुखी नीग्रो को गोरा बनानकर उसे भौतिक अभिशाप के बोझ से मुक्ति दिलाई जा सकें। ऐसे औपनिवेशिक दुनिया में मूल-निवासियों का अमानवीयकरण किया गया। फ़ैनन कहते हैं कि एक नस्ल का दूसरे नस्ल से शोषण का मामला है और ऐसे तिरस्कार पर आधारित है जो मानव सभ्यता में श्रेष्ठता के भाव को दिखाता है। मूल-निवासियों द्वारा इसे संघर्ष से ही खत्म किया जा सकता है।

विउपनिवेशीकरण, भाषा एवं फ़ैनन :

फ़ैनन के अनुसार 'वि-उपनिवेशीकरण, जो दुनिया को बदलने का उपक्रम है, जाहिर तौर पर पूरी अराजकता का कार्यक्रम है।'[9] इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में दो शक्तियों के बीच नैसर्गिक संघर्ष एवं प्रतिरोध होता है। उपनिवेशिकरण के आरंभ से लेकर वि-उपनिवेशीकरण तक मूल-निवासियों एवं अधिवासियों में हिंसात्मक संघर्ष चलता रहता है, पहले को अंतिम और अंतिम को पहला बनने के पूरे संघर्ष में स्व-अस्तित्व का सवाल छुपा रहता है, जहाँ मूल-निवासी हिंसा के ज़रिए अधिवासियों से सवाल कर पता है। अधिवासी द्वारा किया शोषण और अत्याचार ही देसी व्यक्ति को संघर्ष के लिए खड़ा करता है, बंदूक की नोंक पर जो शासन किया गया, उन्हें हीन एवं असभ्य बताते हुए उनके संसाधनों पर कब्ज़ा किया गया, देसी व्यक्ति हर अत्याचार को अपने सीने में आग की तरह सहजता रहता है। मूल निवासियों के प्रति उनके अमानवीयकरण की सार्वजनिक घोषणा की जाती है, भाषाई आधार पर नए तगमे और संबोधन के रूप में पशु, जानवर, राक्षस, असभ्य, बर्बर इत्यादि कहा जाता हैं।

फ़ैनन भाषा को बुनियादी महत्व देते हैं क्योंकि बोलना हमेशा दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर करता है। अश्वेत व्यक्ति के दो आयाम देखने को मिलते हैं, एक अपने साथियों-नीग्रो के साथ और दूसरा अधिवासी- श्वेत के साथ। नीग्रो का नीग्रो के साथ और नीग्रो का श्वेत के साथ व्यवहार परिवर्तित रहता है, यह उपनिवेशवाद अधीनता और आत्म-विभाजन का प्रत्यक्ष परिणाम है। फ़ैनन कहते हैं कि समाज में बौद्धिक अलगाव मध्य वर्ग की देन है, जो पूर्व-निर्धारित रूपों में जकड़ों होता है और विकास, प्रगति और नई खोज को रोकता है। नीग्रो सभ्यता के अस्तित्व की खोज से अब तक मानवता को लेकर कोई पेटेंट नहीं मिला है। यूरोप का मानवतावादी सिद्धांत यूरोप से बाहर निकलते ही समाप्त हो जाता है, ग़ैर-यूरोपियन के साथ औपनिवेशिक शक्तियों का बर्ताव समानता और बंधुत्व का नहीं रहता है। ऐसे में वि-उपनिवेशीकरण के दौरान मूल-निवासियों की भाषा और नस्ल उनमें एकता और साहस पैदा करती है। भाई-बहन-दोस्त के संबोधन और देसी के व्यक्तियों के संवाद पर जब रोक लगाई जाती है तो वे उसे नकारने लगते हैं। उपनिवेश का शोषण ही उपनिवेश से लड़ने की शक्ति देता है, अधिवासियों का अत्यधिक शोषण ही मूल-निवासियों को भयमुक्त और निडर बनाता है। राजनीतिक दल, व्यापारिक और बुद्धिजीवी वर्ग वे शक्तियां है जो मूल-निवासियों के लिए हिंसा के नए रास्ते तलाशने का काम करती है और नए लक्ष्य निर्धारित करती है। संघर्ष करने वाला बुद्धिजीवी वर्ग देसी लोगों से अधिक महत्व चाहता है जबकि देसी व्यक्ति नहीं चाहता कि वह सड़क किनारे खड़े होकर अपने मुक्ति का तमाशा देखें। वि-उपनिवेशीकरण के दौरान देसी व्यक्ति अधिवासी के पद-हैसियत, संसाधन नहीं चाहता है बल्कि वह अधिवासी की जगह चाहता ताकि आत्म-नियंत्रण स्थापित कर सकें।

मुक्ति की हिंसा और फ़ैनन :

फ़ैनन दमनकारी हिंसा के जवाब में की गई हिंसा को मुक्ति की हिंसा कहते हैं जो उपनिवेश के मूल-निवासियों का पुनःसर्जन करती है। हिंसा के ज़रिए मूल-निवासी अधिवासियों से सवाल-जवाब करते हुए अपने नव-राष्ट्र निर्माण की ओर अग्रसर होते हैं। वि-उपनिवेशीकरण के दौर में मूल-निवासियों के लिए केवल मुक्ति ही महत्वपूर्ण नहीं होती है बल्कि उन्हें अधिवासियों से अपनी संस्कृति, भाषा और सभ्यता को संरक्षित करना होता है, फ़ैनन असल मायनों में इसे ही वास्तविक मुक्ति मानते हैं। फ़ैनन मुक्ति के लिए अंतिम लक्ष्य एवं सीधी कार्यवाही के लिए हिंसा को महत्व देते हैं। वे हिंसा के दो प्रकार बताते हैं:- क्रांतिकारी हिंसा और दमनकारी हिंसा। क्रांतिकारी हिंसा वह हिंसा जिसके ज़रिए देसी व्यक्ति औपनिवेशिक शक्ति के ख़िलाफ़ एकजुट होकर मुक्ति के लिए संघर्ष करता है, समानता एवं न्याय की माँग करता है। दमनकारी हिंसा जिसमें औपनिवेशिक शक्ति द्वारा देसी व्यक्ति पर शासन के लिए जो शोषण और दमन अपनाया जाता है।

फ़ैनन लिखते हैं कि, 'यह अदमनीय हिंसा न तो शोर-शराबा है, न ही बर्बर वृत्तियों का उभार, न ही असंतोष का परिणाम। यह मनुष्य द्वारा स्वयं का पुनर्निर्माण है।'[10] देसी व्यक्ति के लिए यह एक रचनात्मक विचार है जिसके ज़रिए वह उपनिवेश को ख़त्म करते हुए नए राष्ट्र और समुदाय निर्माण की दिशा में अग्रसर रहता है। देसी व्यक्ति द्वारा की गई हिंसा उपनिवेश की हिंसा की ही प्रतिक्रिया होती है, जितना शोषण और दमन देसी व्यक्ति का किया जाता है उसी अनुपात में देसी व्यक्ति औपनिवेशिक शक्ति को प्रतिक्रिया देता है। फ़ैनन हिंसा के दो चरण बताते हैं, पहले चरण में ग़ैर-राजनीतिक हिंसा होगी, जिसमें व्यक्ति एकजुट न होकर बिखरे हुए रूप में उपनिवेश के विरुद लड़ना सीखते हैं और अपने अस्तित्व की रक्षा करते हैं। दूसरे चरण में मुक्ति के बाद हिंसा पूर्णतः संगठित एवं राजनीतिक होती है, जिसमें राष्ट्र निर्माण किया जाता है और लोगों में समझ विकसित की जाती है। सार्त्र कहते हैं कि अधिवासी की जगह अपने आपको स्थापित करना ही हिंसा का सबसे बड़ा कारण है।

निष्कर्ष :

वि-उपनिवेशीकरण के दौर में फ़्रांज फ़ैनन को प्रमुख नायक माना जाता है। फ़ैनन का मानना है कि तर्क और मानवीय गरिमा के सम्मान से कभी भी वास्तविकता नहीं बदल सकती है। नीग्रो के लिए केवल एक ही उपाय हो सकता है : संघर्ष। दुःख, भूख और शोषण के विरुद्ध संघर्ष के बिना नीग्रो के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।बी. के. झा लिखते हैं कि फ़ैनन हिंसा के ज़रिए मनुष्य के नव-सृजन की बात करते हैं, जबकि हिंसा द्वारा तो हिंसक मानव का ही निर्माण होगा न कि रचनात्मक मनुष्य का। एल.ए. जिनाडू लिखते हैं कि फ़ैनन ने उपनिवेश की हिंसा का विरोध किया और देसी व्यक्ति के हिंसा के ज़रिए मुक्ति को आत्म-साक्षात्कार का साधन माना। फ़ैनन ने हिंसा के ज़रिए नस्लवाद और उपनिवेशवाद को ख़त्म कर नए राष्ट्र निर्माण की संकल्पना की। फ़ैनन मुक्ति के लिए हिंसा को साधन मानते हैं, जिसे कुछ लोग अहिंसक हिंसा कहते हैं क्योंकि मूल-निवासियों के साथ न्याय हिंसा के ज़रिए ही हो पाता है, लेकिन न्याय के लिए हिंसा को अहिंसा नहीं कहा जा सकता है। फ़ैनन की तमाम आलोचनाओं के बावजूद उन्होंने उपनिवेशित लोगों की पहचान और मुक्ति के लिए न केवल सैद्धांतिक पृष्ठभूमि तैयार की बल्कि इसका प्रयोग भी अल्जीरिया में किया। उन्होंने 'ब्लैक-व्हाइट' संबंधों को दुनिया के सामने रखा और समानता की वकालत की।

संदर्भ :-

[1] जांगिड़, योगेश कुमार. *एम. के. गांधी एवं फ्रांज फ़ैनन के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन: हिंसा-अहिंसा के सिद्धांत के विशेष संदर्भ में*. पृ. 70

[2] Manji, F. Culture, power and Resistance. *STATE OF*, 64.

[3] Fanon, F., Sartre, J. P., & Farrington, C. (1963). *The wretched of the earth* (Vol. 36, pp. 3-317). New York: Grove press.

[4] नेह, महेंद्र. (2024, सितम्बर). *'प्रतिरोध की संस्कृति' पर केन्द्रित 'कथान्तर' का विशेषांक* [पत्रिका का विशेष अंक]. *देश-विदेश, 46*. उपलब्ध: https://deshvidesh.net//entries/view/kathanatar-pratirodh-sanskriti

[5] Fanon, F., Sartre, J. P., & Farrington, C. (1963). *The wretched of the earth* (Vol. 36, pp. 3-317). New York: Grove press.

[6] Fanon, F., Sartre, J. P., & Farrington, C. (1963). *The wretched of the earth* (Vol. 36, pp. 3-317). New York: Grove press.

[7] Fanon, F. (1970). *Black skin, white masks* (pp. 13-30). London: Paladin.

[8] Fanon, F., Sartre, J. P., & Farrington, C. (1963). *The wretched of the earth* (Vol. 36, pp. 3-317). New York: Grove press.

[9] फैनन, फ्रांज. (2013). *धरती के अभागे*. नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी. पृ. 29

[10] फैनन, फ्रांज. (2013). *धरती के अभागे*. नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी. पृ. 19

अन्य संदर्भ :-

Cabiles, B. S. (2025). Internalised deficit perspectives: Positionality in culturally responsive pedagogical frameworks. *Pedagogy, Culture & Society*, *33*(4), 1129-1146.

Hilton, B. T. (2011). Frantz Fanon and colonialism: A psychology of oppression. *Journal of Scientific Psychology*, *12*(1), 45-59.

Novey, W. (2021). Revisiting Frantz Fanon: his life and legacy on race, colonization, and psychiatry. *American Journal of Psychiatry Residents' Journal*, *16*(4), 11-12.

Srivastava, N. (2013). Towards a critique of colonial violence: Fanon, Gandhi and the restoration of agency 1. In *Literature, Migration and the'War on Terror'* (pp. 59-74). Routledge.

फैनन, फ्रांज. (2020). अश्वेत का यथार्थ (हिंदी अनुवाद). पक्षधर, 25–26.

मुगलकालीन शाही महिलाओं का सांस्कृतिक योगदान

(स्थापत्यकला व चित्रकला के विशेष संदर्भ में)

डॉ. लाला बाबू*
lbgaur999@gmail.com

सारः

मुगलकाल में भारत में सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुमूल्य विकास हुआ, जिसमें मुगल शासकों के साथ ही मुगल शाही घराने की महिलाओं ने बढ़-चढ़कर प्रतिभाग किया। मुगलकालीन संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों यथा स्थापत्यकला, चित्रकला, बागवानी, नृत्यकला, संगीतकला, साज-सज्जा, शिक्षा एवं साहित्य इत्यादि में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस अंक में हम स्थापत्य कला व चित्रकला में उनके योगदान की विस्तृत चर्चा करेंगे।

मुख्य शब्दः संस्कृति, स्थापत्य कला, चित्रकला, पिटराड्यूरा, चारबाग, बागवानी, सराय, गुम्बद।

प्रस्तावनाः

संस्कृति मानव की सभी गतिविधियों एवं बौद्धिक उपलब्धियां का प्रकटीकरण है। संस्कृति एक अमूर्त पद है जिसे वैज्ञानिक पदों की भांति परिभाषा की सीमा में बांधना समीचीन प्रतीत नहीं होता। वास्तव में संस्कृति शब्द का अर्थ अत्यन्त ही व्यापक है। रैडफील्ड के अनुसार, "संस्कृति, कला, वास्तुकला में स्पष्ट होने वाले परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।[1]

डॉ. बलदेव प्रसाद ने संस्कृति का वास्तविक अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि - "संस्कृति मानव जीवन के विचार, आचार, उद्धार का संशुद्धिकरण अथवा परिमार्जन है, वह है। मानव जीवन की सजी संवरी हुयी अन्तः स्थिति, वह मानव जीवन की परिमर्जित मति, रुचि, प्रकृति पुँज का नाम।"[2]

मुगलकाल में भारत में सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण एवं बहुमुखी विकास हुआ। इस काल में स्थापत्य, चित्रकारी, नृत्य, संगीत, शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में जिन परम्पराओं की स्थापना हुयी, उन्होंने एक प्रतिमान का सूत्रपात किया और भावी पीढ़ियों पर उनका गहन प्रभाव पड़ा। इस दृष्टि से मुगलकाल को गुप्तकाल के बाद उत्तर भारत का दूसरा स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस सांस्कृतिक विकास के क्रम में भारतीय परम्पराओं का मुगलों द्वारा इस देश में लायी गयी तुर्की-ईरानी संस्कृति के साथ मिश्रण हुआ।[3] मुगल शासकों का शाही महिला वर्ग इस सांस्कृतिक विकास में कभी भी पीछे नहीं रहा।

स्थापत्य कला, चित्रकला, नृत्य, संगीत कला, शिक्षा एवं साहित्य की दिशा में मुगल शाही महिलाओं का योगदान अभूतपूर्ण है। मुगलशाही महिलाओं ने अपने योगदान में जहां इस देश की संस्कृति में राष्ट्रीयधारा

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कृषक (पी.जी.) कॉलेज मवाना, मेरठ।**

के अनुकूल प्रगति प्रदान की, वहीं भारतीय संस्कृति को कोमलता, लचीलेपन एवं सौन्दर्यीकरण से परिष्कृत रखा। मुगलशाही घराने में राजपूत राजकुमारियों के प्रवेश से विभिन्न सांस्कृतिक शैलियों में नये प्रतिमान स्थापित हुए। ललित कलाओं के सभी क्षेत्रों में हिन्दू प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा।

इन शासकों ने जिस प्रकार विभिन्न कलात्मक एवं सांस्कृतिक आयामों का सर्वांगीण विकास बिना शाही महिलाओं के सकारात्मक सहयोग के संभव नहीं था। मुगल शाही महिलाओं ने स्थापत्य कला, चित्रकला, नृत्य एवं संगीत में विषेश रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगलकाल में स्थापत्य कला का अत्यधिक विकास हुआ। शाही घराने की महिलायें स्थापत्य कला में विशेष रुचि रखती थी और अपने इस शौक को पूरा करने में वे मुगल शासकों से किसी भी रूप में पीछे नहीं थी।

इसमें उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था और इस क्षेत्र में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया। मुगलों ने एक प्रचलन यह था कि अपनी मृत्यु से पूर्व ही मृत्यु के पश्चात एक विश्राम स्थल को चुन लेते थे तथा उस पर अपने मकबरे का निर्माण करते थे, तत्पश्चात् उन्हें मृत्यु उपरान्त उसी स्थान पर दफनाया जाता था। शाही महिलायें इस प्रचलन में पीछे नहीं थी। जैसे- जोधाबाई ने आगरा के निकट स्थान चुना और वहां सुहागपुरा की नींव रखी तथा उसको यहीं दफनाया गया। यह स्थान आज भी सुरक्षित है यद्यपि इसके ऊपर की छतरी क्षति-ग्रस्त हो गयी है किंतु उसका स्थान आज भी जोधाबाई का चबूतरा कहलाता है तथा यह आगरा के भोगीपुरा मौहल्ले में स्थित है।[4]

जहांगीर की पुत्री सुल्तानुन्निसा बेगम ने भी अपने लिए मकबरे का निर्माण प्रारम्भ किया था परन्तु वह उसकी मृत्यु तक पूर्ण नहीं हो सका और उसकी इच्छा के अनुसार उसे उसके बाबा के मकबरे सिकन्दरा के पास उसे दफना दिया गया।[5]

इसी प्रकार हुमायूं की पत्नी हमीदा बानो बेगम द्वारा निर्मित हुमायूं का मकबरा इन्डो-इस्लामिक स्थापत्य कला के विकास में प्रारंभिक भू चिन्ह के रूप में नामांकित किया जा सकता है।6 इसका निर्माण हमीदा बानो बेगम ने हुमायूं की मृत्यु के 8 वर्ष बाद 1564 ई. में आरम्भ करवाया था। इस मकबरे की नक्काशी फारसी शिल्पकार मलिक मिर्जा ग्यास ने तैयार की थी तथा इसके निर्माण कार्य को पूर्ण करवाकर हाजी बेगम के स्वप्न को साकार किया था।[7]

इस मकबरे में पहली बार मुख्य कब्र के ऊपर भव्य दोहरे गुम्बद का निर्माण किया गया है। जिसमें अन्दर वाला गुम्बद लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है और बाहर का भाग सुन्दर संगमरमर से बना है। इस मकबरे में पहली बार चारबाग शैली का प्रयोग हुआ है।[8]

हुमायूं के मकबरे को ताजमहल का पूर्वगामी कहा जाता है तथा इसे एक वफादार पत्नी का उसके स्वर्गीय पति के लिए श्रद्धांजलि का प्रतीक कहा जाता है। पर्सीब्राउन के अनुसार "यह ईरानी कल्पना की भारतीय व्याख्या है।" डॉ. कानूनगो ने लिखा है कि "यह बाहर से मुस्लिम तथा अंदर से हिन्दू है।"[9]

स्थापत्य कला की दृष्टि से अकबर का शासनकाल विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उसका काल प्रत्येक क्षेत्र में नवीन प्रयोगों के लिए उल्लेखनीय है। अबकर द्वारा निर्मित फतेहपुर सीकरी की विभिन्न भवनों में स्थापत्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। उसकी राजपूत रानी के लिए जोधाबाई का महल, मरियम महल, सुनहला भवन व छोटा सा बगीचा जो आज भी स्थित है। जिस पर हिन्दू प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।[10] इसकी निचली मंजिल के कमरों में विभिन्न आले बने हैं। जिनमें कृष्ण एवं हनुमान की मूर्तियां निर्मित हैं। इसके

अतिरिक्त जोधाबाई का महल भी हिन्दू स्थापत्य का उत्कृष्ट नमूना है। इसके सभी कमरों की सजावट हिन्दू मंदिरों की सजावट जैसी है।[11]

तुर्की-सुल्ताना का महल इतना सुन्दर है कि पर्सीब्राउन ने उसे "स्थापत्य-कला का मोती" कहा है। नूरजहां को अपने जीवनकाल में जहां विभिन्न महत्वाकांक्षी योजनाओं के निर्माण लिए जाना जाता है। उसे अपने पिता एत्मातुद्दौला (मिर्जा ग्यास बेग) के मकबरे के निर्माण के लिए स्थापत्य कला के क्षेत्र में सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। नूरजहां ने इसका निर्माण 1626 ई. में ईरानी शैली के आधार पर करवाया था। यह मकबरा सुन्दर बगीचे के मध्य लाल पत्थरों से घिरे हुए अहाते में स्थित है। यह प्रथम मकबरा है जो नदी के किनारे स्थित है। इस मकबरे को सुन्दर नक्काशीदार तथा पच्चीकारी (पिटराड्यूरा) के द्वारा अलंकृत करने का प्रयास किया गया है।[12] मुगल स्थापत्य कला में पहली बार पिटराड्यूरा का प्रयोग बड़े पैमाने पर एत्मादुद्दौला के मकबरे में हुआ है। मुगल स्थापत्य कला में पिट्राड्यूरा या पच्चीकारी संगमरमर के पत्थरों पर सोने, हीरे, जवाहरात एवं अन्य बहुमूल्य पत्थरों से की गयी जड़ावत को कहा गया। यह पूर्णतः संगमरमर से निर्मित प्रथम मकबरा माना जाता है।[13]

शाहजहां की इमारतों में जो स्त्रियोचित लक्षण दृष्टिगत होते हैं, उसकी नींव नूरजहां ने ही रखी थी। इसके अन्दर विभिन्न रंगों का जो सामंजस्य है, ऐसा प्रतीत होता है मानो चारों तरफ ईरानी कालीन बिछे हुए हैं। इस कला का पूर्ण विकास शाहजाहं के काल में हुआ। अलंकरण का वह कार्य जो विश्व प्रसिद्ध इमारत ताजमहल में प्रदर्शित हुआ है। इस मकबरे के अलंकरण से अत्यधिक साम्य रखता है जो कि ताज के प्रारंभ होने के तीन वर्ष पूर्व बनकर पूर्ण हुआ था।[14]

इस मकबरे को अकबर और शाहजहां के स्थापत्य के मध्य एक कढ़ी माना जाता है।[15] मुस्लिम स्थापत्य कला एवं भारतीय स्थापत्य कला की दूरी को कम करके निकट लाने में नूरजहां ने बहुमूल्य योगदान दिया। इसके अतिरिक्त संगमरमर में दक्ष कारीगरों के हाथ से कीमती जड़ाऊ पत्थर के काम करने वाले कुशल कलाकारों ने स्वर्णकारों और रजतकारों की भांति कला की बारीकियों का कौशलपूर्ण नियोजन नूरजहां की प्रेरक शक्ति के कारण ही किया।[16] इस मकबरे को देखने से उसकी पिता के प्रति श्रद्धा का अंदाजा लगाया जा सकता है और नदी के तट पर मकबरे के निर्माण की परम्परा का श्रेय भी नूरजहां को ही जाता है।[17] नूरजहां ने अपने खर्च पर तथा अपनी देख-रेख में ही लाहौर के शाहदरा में रावी नदी के किनारें जहांगीर के मकबरे का निर्माण करवाया। यद्यपि इसकी योजना स्वयं जहांगीर ने बनायी थी।[18]

आगरा के लाल किले के उत्तर-पश्चिम में स्थित जामा मस्जिद के निर्माण का श्रेय भी मुगलशाही घराने की एक महत्वपूर्ण महिला शाहजहां की पुत्री जहांआरा बेगम को जाता है।[19] इसमें अंकित अभिलेख से प्रमाणित होता है कि इसका निर्माण सन् 1058 हिजरी अथवा 1648 ई. में पांच लाख रुपये की कीमत से हुआ था। इसके साथ-साथ लाहौर के एक बाजार चौक सराय 20 एवं दिल्ली के चांदनी चौक के निर्माण का श्रेय भी जहांआरा बेगम को जाता है।[21] औरंगजेब की पुत्री जीनत-उल-निसा ने भी एक शानदार मकबरा जीनत-उल-मंजिल का निर्माण कराया था और वह इसी में दफनाई गयी थी।[22] इसके अतिरिक्त शाही महिलाएं लोक-कल्याणकारी कार्यों में भी अत्यन्त रुचि रखती थी। यही वजह है कि उन्होंने बाह्य क्षेत्रों एवं देशों से आने वाले यात्रियों के लिए न केवल सराय इत्यादि का निर्माण कराया बल्कि उनकी देखभाल के लिए भी तत्पर रहती थी। इसी प्रकार हाजी बेगम ने प्रसिद्ध अरब सराय का निर्माण कराया जो कि अरब व्यापारियों व यात्रियों के विश्राम के लिए महत्वपूर्ण स्थल है।[23]

नूरजहां इस क्षेत्र में दिलचस्पी रखती थी और उसने आगरा में नूरमहल की सराय और पटना में एक सराय का निर्माण कराया तथा सिकन्दरा में भी एक अन्य सराय का भी निर्माण कराया था। नूरमहल की सराय इतनी विस्तृत थी कि इसमें एक समय में दो-तीन हजार तक मनुष्य एवं पांच-सौ घोड़े विश्राम कर सकते थे। इसके कमरे मेहरावयुक्त बने हुए हैं और सामने की नक्काशी अत्यन्त सुन्दर है। यह पूरी सराय पत्थर से निर्मित है और इसमें कहीं भी लकड़ी का प्रयोग नहीं हुआ है।[24] उसने (नूरजहां) जिन-जिन स्थानों पर सरायें व विश्राम स्थलों का निर्माण करवाया था उनमें थके हुए यात्रियों को मानसिक संतुष्टि प्रदान करने के लिए खुशनुमा पुष्पों, छायादार वृक्षों व छोटे-छोटे कुंजों से युक्त बगीचे भी बनवाये।[25] इसी प्रकार जहांआरा बेगम ने भी खिरकी में प्रसिद्ध कारवां-ए-सराय का निर्माण करवाया।[26]

औरंगजेब की पुत्री जीनत-उल-निशा ने तो लगभग चौदह कारवाँ-ए-सरायों का निर्माण करवाया।[27] औरंगजेब की पत्नी नबाबबाई ने भी फर्दपुर में एक सराय का निर्माण करवाया था और औरंगाबाद के बाहरी इलाके में बेजापुर की स्थापना की थी।[28]

इस प्रकार ये शाही मुगल महिलायें स्थापत्य के क्षेत्र में किसी भी शासक से कमतर नहीं रहीं। स्थापत्य कला के क्षेत्र में शाहजहां के काल के स्वर्णयुग की आधारशिला नूरजहां द्वारा स्थापित मानदण्डों के आधार पर ही रखी जा सकी। मुगलकालीन स्थापत्य कला में शाही महिलाओं का योगदान चिरस्मरणीय होने के साथ-साथ स्तम्भित करने वाला भी है।

आदिकाल से ही चित्रकला मानव मन के रहस्यों, उसके अंतःमन के भावों को उद्घाटित करने का प्रमुख साधन रही है। प्राचीन काल में भारत में चित्रकला में अत्यन्त उन्नति हुयी थी तथा हिन्दू और बौद्ध धर्म के विदेशों में प्रचार होने से उसने एशिया के विभिन्न देशों की चित्रकला को प्रभावित किया था। परन्तु बाद के समय में इसकी प्रगति संभव न हो सकी तथा मुसलमान सुल्तानों के समय में भी यही स्थिति रही। मुगलकाल में चित्रकला खूब फली-फूली।[29] मुगल बादशाहों के साथ-साथ मुगल शाही महिलाओं ने भी चित्रकारी में विशेष रुचि प्रदर्शित की। दृढ़तापूर्वक तो किसी महिला चित्रकार का प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु ऐसे अनेक तत्कालीन तथ्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मुगलशाही महिलाएं चित्रकारी में न केवल रुचि रखती थी बल्कि इस कला में सक्रिय योगदान एवं संरक्षण भी प्रदान करती थीं।[30]

नूरजहां जहांगीर के साथ चित्रकला में पर्याप्त रुचि लेती थी। परन्तु नूरजहां के हाथ की कोई कृति उपलब्ध नहीं है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि व स्वयं कला में पारंगत थी। गुलाम हसन द्वारा प्रस्तुत एक चित्र का उसने बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण किया था।[31]किसी वेनिस निवासी ने उच्चतम मूल्य देकर मुगल शाही महिलाओं के चित्र, पारंगत कलाकारों व दरबार के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संरक्षण प्राप्त चित्रकारों द्वारा प्राप्त किए। ये सभी चित्र सेंटमार्क चित्रकालय में सुरक्षित हैं।[32]

संभवत मुगलशाही महिलाओं ने चित्रकला को इतना प्रोत्साहन प्रदान नहीं किया जितना संगीत नृत्य गायन एवं स्थापत्य कला इत्यादि कलाओं को। यहीं कारण है कि महिला चित्रकारों की संख्या न के बराबर ही थी।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि मुगल शाही घराने की महिलाओं ने स्थापत्यकला व चित्रकला के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान दिया तथा भारतीय व ईरानी पद्धतियों का अप्रतिम समन्वय किया। जिससे स्थापत्य कला व चित्रकला की एक नवीन शैली अर्थात मुगल शैली या यह कहें कि राष्ट्रीय शैली का विकास संभव हुआ। इनके इस योगदान के लिए इन्हें चिरकाल तक याद किया जाता रहेगा।

संदर्भ :

1. चन्द्र, सतीश. *मध्यकालीन भारत*. पृ. 296.
2. मिश्र, बल्देव प्रसाद. (1953). *भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान*. नागपुर: नागपुर विश्वविद्यालय. पृ. 8.
3. राजाराम, कल्पना. (2013). *भारतीय संस्कृति*. नई दिल्ली: स्पेक्ट्रम बुक्स (इंडिया) प्रा. लि. पृ. 2.
4. श्रीवास्तव, आशीर्वाद लाल. *अकबर दि ग्रेट* (तृतीय खंड). आगरा: शिवलाल अगरवाला एण्ड कम्पनी. पृ. 293.
5. जहाँगीर. (1909/1914). *तुज़ुक-ए-जहाँगीरी* (अनु. अलेक्ज़ेंडर रॉजर्स; सम्पा. हेनरी बेवरिज). लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसायटी. पृ. 232–233.
6. श्रीवास्तव, आशीर्वाद लाल. *अकबर दि ग्रेट* (तृतीय खंड). आगरा: शिवलाल अगरवाला एण्ड कम्पनी. पृ. 276–277.
7. पाण्डे, एस. के. (2010). *मध्यकालीन भारत* (प्रथम संस्करण). पृ. 627.
8. श्रीवास्तव, आशीर्वाद लाल. *अकबर दि ग्रेट* (तृतीय खंड). आगरा: शिवलाल अगरवाला एण्ड कम्पनी. पृ. 277.
9. पाण्डे, एस. के. *मध्यकालीन भारत*. पृ. 627.
10. स्टुअर्ट, सी. एम. डब्ल्यू. (1913). *गार्डन ऑफ दि ग्रेट मुगल्स*. लंदन: ए. एण्ड सी. ब्लैक. पृ. 246.
11. श्रीवास्तव, आशीर्वाद लाल. *अकबर दि ग्रेट* (तृतीय खंड). आगरा: शिवलाल अगरवाला एण्ड कम्पनी. पृ. 293–295.
12. बनर्जी, एस. के. "दि टौम्ब ऑफ एतमादुद्दौला।" *इस्लामिक कल्चर*. पृ. 130–134.
13. पाण्डे, एस. के. *मध्यकालीन भारत*. पृ. 635.
14. मजूमदार, के. सी. *इम्पीरियल ऑफ द मुगल*.
15. शर्मा, एल. पी. (2013). *मध्यकालीन भारत*. पृ. 346.
16. प्रसाद, बैनी. (1922). *हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर*. ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस. पृ. 425. साथ ही: मौतमिदखाँ. *इक़बालनामा-ए-जहाँगीरी* (एलिएट एवं डाउसन, षष्ठ खंड). पृ. 326.
17. सनवाल, वी. डी. (1968). *आगरा एण्ड इट्स मॉन्यूमेंट्स*. आगरा: आगरा विश्वविद्यालय.
18. पाण्डे, एस. के. *मध्यकालीन भारत*. पृ. 635.
19. सक्सेना, बनारसी प्रसाद. (1932). *हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ दिल्ली*. इलाहाबाद: सेंट्रल बुक डिपो. (पुनर्मुद्रण: दिल्ली: भारतीय कला प्रकाशन, 2013).
20. कम्भु, मोहम्मद सालेह. (1907–08). *अमल-ए-सालेह (शाहजहाननामा)* (तृतीय खंड). कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल. पृ. 47.
21. लववहसम एवं सिंह, ओमप्रकाश. *भारत का आर्थिक इतिहास*. पृ. 101.
22. सरकार, जदुनाथ. (1947). *शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब*. कलकत्ता: एम. सी. सरकार एण्ड संस. पृ. 16.
23. बनर्जी, एस. के. *हुमायूँ बादशाह* (द्वितीय खंड). पृ. 317.
24. मुंडी, पीटर. (1914). *दि ट्रैवल्स ऑफ पीटर मुंडी इन एशिया* (खंड द्वितीय; सम्पा. रिचर्ड टेम्पल). लंदन: हक्ल्युट सोसायटी. पृ. 78, 79, 159. साथ ही: पैलसर्ट, फ्रांसिस्को. (1925). *दि रिमान्स्ट्रान्टी (जहाँगीर'स इंडिया)* (अनु. डब्ल्यू. एच. मोरलैण्ड एवं पी. गेल). कैम्ब्रिज: डब्ल्यू. हेफ़र एण्ड संस. पृ. 4.
25. पैलसर्ट, फ्रांसिस्को. (1925). *जहाँगीर'स इंडिया: दि रिमान्स्ट्रान्टी ऑफ फ्रांसिस्को पैलसर्ट* (अनु. डब्ल्यू. एच. मोरलैण्ड एवं पी. गेल). कैम्ब्रिज: डब्ल्यू. हेफ़र एण्ड संस. पृ. 45–96.
26. चौपड़ा, पी. एम. *लाइफ एण्ड लैटर्स अण्डर दि मुगल*. पृ. 242. साथ ही: *जर्नल ऑफ पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी*, द्वितीय खंड. पृ. 15.
27. सरकार, जदुनाथ. (1947). *शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब*. कलकत्ता: एम. सी. सरकार एण्ड संस. पृ. 13–14.
28. गुलबदन बेगम. (1902). *हुमायूँनामा* (अनु. एवं सम्पा. ए. एस. बेवरिज). लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसायटी (लुज़ाक एण्ड कम्पनी). पृ. 113.
29. शर्मा, एल. पी. *मध्यकालीन भारत का इतिहास*. पृ. 348.
30. कौमुदी. (1946). *स्टडीज इन मुगल पेंटिंग्स* (अप्रकाशित शोध). इलाहाबाद: इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय. पृ. 58. (भारतकला भवन, बनारस में संबंधित चित्र सुरक्षित).
31. प्लेट सप्तम – स्टाउकिन.
32. *जर्नल ऑफ दि बॉम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी*, खंड 22(61). (1906). पृ. 189.

21 वीं सदी का युवा वर्ग और 'दौड़' उपन्यास का समकाल

डॉ. शेख उस्मान*
usman.s@abbs.edu.in

शोध सार-

ममता कालिया हमारे समय की एक सशक्त रचनाकार है। इन्होंने कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से मानवीय संबंधों की गहरी पड़ताल की है। 'दौड़' ममता कालिया द्वारा रचित छठा उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने 21 वीं सदी के उस युवा पीढ़ी को केंद्र में रखा है जो बाजारवाद, उपभोक्तावाद एवं आजीविका की तलाश में अपने पारिवारिक संस्कारों एवं वृद्ध माता-पिता को अकेला छोड़कर बाजारों की चौका-चौंध में अपने अस्तित्व की तलाश कर रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव के कारण युवाओं को रोजगार तो मिल रहा है लेकिन उनका जीवन धीरे-धीरे सारहीन होता जा रहा है, इसी की ओर लेखिका अधिक बल देती है। समकालीन समय की युवा पीढ़ी भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव में फंसकर विज्ञापनों की दुनिया को ही सच मानकर अपने जीवन को प्रभावित कर रही है, इतना ही नहीं युवाओं के मध्य पुराने संस्कारों एवं संस्कृति को लेकर भी संशय दिखाई देता है। 'दौड़' उपन्यास के केंद्र में पवन और सघन एक ऐसे चरित्र हैं जो पूरी 21 वीं सदी के मध्यवर्ग एवं उच्च मध्यवर्ग के युवा पीढ़ी का नेतृत्व करते हैं। इन चरित्रों की विशेषता यह है कि इन्होंने अपना चरित्र आस-पास के परिवेश से प्रभावित होकर स्वंय गढ़ा है, जीवन के प्रति उनका अपना सौंदर्यशास्त्र है। आज की युवा पीढ़ी साहित्य और संस्कृति के बीच पली-बढ़ी न होकर यह इंटरनेट, ई-मेल, फैक्स और मनोरंजन के विविध माध्यमों के बीच अपना जीवन यापन कर रही है। लेकिन विडंबना यह है कि इस सरगम के बीच रिश्ते-नातों का गहरा संवेदनात्मक स्वर दिखाई नहीं देता। अतः आज की युवा पीढ़ी पुरातन संस्कृति एवं पुरानी पीढ़ी के संस्कारों को सजोये रखने की बजाए किस तरह से उसे पूर्णत: मूल्यहीन साबित कर अंधी दौड़ में दौड़ रही है इसी का वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में चित्रित हुआ है।

बीज शब्द-

भूमंडलीकरण, आजीविकावाद, उपभोक्तावाद, संस्कृति, नव उदारीकरण, निजीकरण, मानवीय संबंध, बाजारवाद.

शोध विस्तार-

समाज हमेशा परिवर्तित रहा है, परिवर्तन के साथ हमने बहुत कुछ सीखा भी है लेकिन आज हमने परिवर्तन के अंधी दौड़ में बहुत कुछ छोड़ भी दिया है। नब्बे के पश्चात् देश एवं दुनिया में आए परिवर्तनों के कारण भारत एक विशाल बाजारवाद के रूप में उभर कर सामने आया। बढ़ते वैश्विकरण, नव उदारीकरण एवं निजीकरण के कारण भारत में वैश्विक बाजारवाद का आगमन होने लगा, जिसके फलस्वरूप भारत में अनेक

*** सहायक प्राध्यापक (हिंदी), डिपार्टमेंट ऑफ़ आर्ट्स एंड ह्यूमैनिटीज**
आचार्य बैंगलोर बी. स्कूल (स्वायत्त), बैंगलोर, 560091

विदेशी कंपनियों का आगमन हुआ। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में तेज़ी से नये-नये अध्याय जोड़े जाने लगे जिसके कारण भारत का युवा वर्ग गांवों से बाहर निकलकर शहरों की तरफ रुख अपनाने लगा। वर्तमान समय में बाजारवाद की चमचमाती एवं रंगीन दुनिया से प्रभावित युवा अपने पुराने संस्कारों एवं माता-पिता के विचारों को मूल्यहीन समझ रहा है। ममता कालिया द्वारा रचित 'दौड़' उपन्यास भी आज के युवाओं में आए परिवर्तनों को सुन्दर ढंग से चित्रित करता है इस संबंध में ममता कालिया स्वंय कहती हैं कि 'आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाज़ार को शक्तिशाली बनाया। इसने व्यापार प्रबंधन की शिक्षा के द्वार खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबंधन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोज़गार के नए अवसर प्रदान किए। युवा-वर्ग ने पूरी लगन के साथ इस सिमसिम द्वार को खोला और इसमें प्रविष्ट हो गया। ...जिन युवा-प्रतिभाओं ने यह कमान सँभाली उन्होंने कार्यक्षेत्र में तो खूब कामयाबी पायी पर मानवीय संबंधों के समीकरण उनसे कहीं ज्यादा खिंच गए, तो कहीं ढीले पड़ गए।' आजीविकावाद के कारण युवा-वर्ग के मध्य आपसी प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ एकाकीपन का विकास हो रहा है। आज आधुनिकता के नाम पर समाज में आ रहे जबर्दस्त बदलावों का असर सीधे तौर पर मानवीय संबंधों पर पड़ा है। पैसे, भव्यता और ग्लैमर के पीछे भागने वाली इस पीढ़ी की दृष्टि में आपसी रिश्ते, सामाजिक बंधन, अपनापन और माँ का ममत्व सब व्यर्थ दिखाई दे रहा है। पवन को एम.बी.ए कराने वाले माता-पिता का सपना था कि उसे बेहतर भविष्य दें, इसी के कारण मल्टीनेशनल कंपनी से जुड़ते ही पवन एक ऐसी दुनिया में प्रवेश करता है, जहाँ रेखा और राकेश के प्रति किसी प्रकार का कोई मोह नहीं रहा। वैश्वीकरण से प्रभावित पवन जब छुट्टी पर अपने घर आता है तब वह गंगा के पानी को पिने योग्य न समझकर घर में एक्वागार्ड लगाने की सलाह देता है।

'दौड़' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र पवन है जो अपने माता-पिता से दूर अहमदाबाद के भाईलाल कंपनी में एल.पी.जी. यूनिट में प्रशिक्षु सहायक मैनेजर के तौर पर नियुक्त हुआ था। आज के युवा वर्गों के बीच तीन अक्षरों वाली डिग्री लेने की होड़ दिखाई देती और वह डिग्री है 'एम. बी.ए'। पवन भी एम. बी.ए. करने के पश्चात् इलाहाबाद से अहमदाबाद की ओर जाने को इच्छुक है, लेकिन उसके माता-पिता अपने बेटे को अपने से दूर नहीं भेजना चाहते थे इसी कारण वह कहते हैं कि आस-पास ही कहीं नौकरी कर ले लेकिन पवन कहता है कि "यहाँ मेरे लायक नौकरी कहाँ पापा? ज्यादा-से-ज्यादा नैनी में नुरामेंट की मार्केटिंग कर लूँगा।" अपने शहर को छोड़कर पवन दूर कहीं एक ऐसी दुनिया में प्रवेश करता है, जिसमें पुराने मूल्य और मानवीय संबंध उतने महत्वपूर्ण नहीं थे। इस उपन्यास में अभिषेक और राजुल का प्रसंग अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान के युवाओं में तनाव एवं अवसाद भाव का बोध तेजी से बढ़ रहा है, जिसके फलस्वरप गृह-कलह उत्पन्न हो रहा है। निजी कंपनियों में नैतिकता का कोई सिद्धांत लागु होते हुए दिखाई नहीं देता क्योंकि राजुल जब गर्भवती हो जाती है तब उसे अपने ही कंपनी में असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है और आतंरिक राजनीति से परेशान होकर वह अपने पद से त्यागपत्र दे देती है। पति-पत्नी के संबंधों को इस उपभोक्तावादी संस्कृति कैसे प्रभावित कर रही है? इसका चित्रण इस उपन्यास में राजुल के इस कथन से स्पष्ट होता है "हिन्दुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं चाहिए। मेरा कितना हर्ज हुआ। अच्छी भली सर्विस छोड़नी पड़ी। मेरी सब कलीग्स

कहती थीं राजुल शादी करके अपनी आज़ादी चौपट करोगी और कुछ नहीं। आजकल तो डिंक्स का जमाना है। डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आमदनी, बच्चे नहीं) मैं सेंटिमेंट के चक्कर में फंस गई।" आज की युवा पीढ़ी अपने मानवीय संबंधों को बगल में रखकर कैरियर की तलाश में आगे बढ़ना चाहती है। वैश्वीकरण एवं बाजारवाद ने माता-पिता को उनके संतानों एवं संस्कृति और परंपरागत रीति-रिवाजों से दूर कर दिया है। जब पवन अपने घर आता है तब वह अपनी माँ रेखा एवं पिता राकेश को अहमदाबाद की भव्यता और चमचमाती दुनिया के बारे में चाव बताता है। लेकिन पिता राकेश की चिंता यह थी कि बेटा इलाहबाद में रहकर ही कुछ करे लेकिन पवन को अपने घर के आस-पास कोई भी कैरियर दिखाई नहीं देता इसीलिए वह अपने पिता से कहता है कि "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड। कलकत्ते में प्रोडूसर्स का मार्केट है, कंज्यूमर का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ, जहाँ कल्चर हो न हो, कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।" यह वाक्य सुनने के पश्चात् राकेश चिंतित हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि बेटा कैरियर के लिए अपनी संस्कृति एवं माँ-पिता के प्रेम को भूल जाएगा। राकेश इस बात के लिए चिंतित है कि उनके बच्चे किस प्रकार के समाज का निर्माण कर रहे हैं, क्योंकि घर परिवार से दूर रहकर युवा संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं। पवन अपने भाई सघन को अपने साथ राजकोट लेकर जाना चाहता है तभी रेखा अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहती है कि "इसको भी लेकर जाओगे तो हम दोनों बिल्कुल अकेले रह जाएँगे। वैसे ही यह सीनियर सिटिजन कॉलोनी बनती जा रही है।" अर्थात् आज आजीविका एवं बाजारवाद से प्रभावित होकर युवा शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप युवाओं एवं माता-पिता के मध्य तनाव एवं एकाकीपन बढ़ रहा है।

आज के इस दौर को पूर्ण रूप से आधुनिक समय नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस समय में वह पीढ़ी भी साँस ले रही है जो पूर्ण रूप से परम्परागत मूल्यों को आत्मसात किए हुए हैं। इस उपन्यास में स्टैला को एक आधुनिक स्त्री के रूप में दर्शाया गया है जो परम्परा एवं रीति-रिवाजों को उतनी अहमियत नहीं देती इसीलिए वह विवाह से पूर्व पवन के साथ एक ही कमरे में रहती है लेकिन यह बात रेखा को बुरी लगती है इसी कारण वह पवन से कहती है कि "मैंने तो ऐसी कोई लड़की नहीं देखी जो शादी के पहले ही पति के घर में रहने लगे।" समकालीन समय में युवा लिव इन रिलेशनशिप में एक साथ शादी के पहले रह रहे हैं लेकिन भारतीय समाज में आज भी इस प्रवृति को स्वीकार नहीं किया गया है। पवन और स्टैला शादी को मानवीय बंधन की दृष्टि से न देखकर कैरियर दृष्टि से देखते हैं क्योंकि इन दोनों का सामूहिक विवाह खरमास में होने वाला था हालाँकि खरमास में विवाह करना शुभ नहीं माना जाता लेकिन पवन इस बात को स्वीकार नहीं करता। पवन और स्टैला अपना विवाह स्वामीजी के आश्रम में करना चाहते हैं उनके लिए विवाह से संबंधित रीति-रिवाज उतने महत्वपूर्ण नहीं है, अतः कहा जा सकता है कि मानवीय संबंधों एवं परंपरा से चली आ रहे रीति-रिवाजों को बाजारवाद एवं वैश्वीकरण ने बहुत ही अधिक प्रभावित किया है। अपने बेटे के विवाह में रेखा और राकेश की भागीदारी कहीं नहीं दिखाई देती है इस व्यथा को रेखा इस तरह से व्यक्त करती है "हम इस सारे प्लान में कहीं

नहीं हैं। हमें तो पन्नू ने उठाकर ताक पर रख दिया है, पिछले साल के गणेश लक्ष्मी की तरह।" आज विकास की अंधी दौड़ में आपसी रिश्ते बहुत ही अधिक प्रभावित हो रहे हैं। अपने बच्चों से दूर होकर माँ-बाप अकेला अनुभव करते हुए दिखाई देते हैं, जिसके फलस्वरूप उनके मध्य एकाकीपन, अवसाद और निराशा की भावना जन्म ले रही है। पवन के बाद जब सघन भी घर छोड़कर बाहर की दुनिया में प्रवेश करता है तब उसके माँ-पिता को घर खाली-खाली लगने लगता है, उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कि वनवास मिल गया हो। दोनों बच्चे जब वैश्वीकरण एवं बाजारवाद से प्रभावित होकर शहर की और चले गए तब वे अपने माता-पिता के द्वारा अर्जित संस्कारों को त्याग कर एक नूतन दुनिया में प्रवेश कर रहे थे। अतः उपभोक्तावादी संस्कृति में मानवीय मूल्य बहुत ही अधिक प्रभावित हो रहे हैं। समकालीन समय में युवा केवल शहर ही नहीं बदल रहे हैं बल्कि देश भी बदल रहे हैं, माँ और पिता को अकेला छोड़कर युवा अपनी प्रगति के लिए विदेशों में प्रवेश कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप वे अपने घर परिवार एवं संस्कारों से दूर होते जा रहे हैं। बच्चे घर छोड़कर विदेशों में जा रहे हैं जिसके कारण माता-पिता के पास अकेलापन के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं है। ममता कालिया जी ने सेमी साहब एवं सिद्धार्थ के माध्यम से आज की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है जिसके अंतर्गत सेमी साहब की मृत्यु के पश्चात् सिद्धार्थ अंतिम क्रिया करने के लिए नहीं आता और वह अपने माँ से कहता है कि "आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह-संस्कार करवाइए।" अतः आज का युवा उपभोक्तावादी संस्कृति के इतने अधीन हो गया है कि उसे अपने पुराने मूल्यों और मानवीय संबंधों का कोई महत्त्व ही नहीं रहा।

ममता कालिया ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की उस विसंगति की ओर इशारा किया है, जिससे मानवीय मूल्य और भारतीय संस्कृति प्रभावित हो रही है। नब्बे के पश्चात् देश एवं दुनिया विकास की प्रतिस्पर्धा में अंधी दौड़ की भांति भागी जा रही है लेकिन विडंबना यह है कि 'विकास' की आड़ में मानवीय संबंधों को मूल्यहीन समझा जाने लगा। ममता कालिया ने पवन, सघन और सिद्धार्थ के माध्यम से 21 वीं सदी के उन नवयुवकों का चित्रण किया है जिन्होंने बाजारवाद और भूमंडलीकरण से प्रभावित होकर अपने माता-पिता को अकेला छोड़ कर विकास की अंधी दौड़ में दौड़ रहे हैं। ममता कालिया ने 'दौड़' उपन्यास में 21 वीं सदी के नव-युवकों की मानसिकता को चित्रित करते हुए भाषा, कथ्य, चरित्र और शिल्प एवं शैली का विशेष ध्यान रखा है।

21 वीं सदी के पश्चात् आए परिवर्तनों का प्रभाव युवाओं के रोजगारों पर पड़ा है। भूमंडलीकरण के आगमन से विदेशी कंपनियों का भारत में प्रवेश होने लगा, जिसके फलस्वरूप युवाओं को नये रोजगार के अवसर प्राप्त होने लगे। युवा घर से बाहर रहने के कारण उनके मध्य अकेलापन तो बढ़ ही रहा है और उस अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए कुछ नौजवान नशीले पदार्थों को अपनाने लगे हैं जिसका उल्लेख मधु कांकरिया के कथा साहित्य में हुआ है। भूमंडलीकरण एवं नव उदारवाद ने किस प्रकार से मानवीय संबंधों को प्रभावित किया है? इसका सूक्ष्म चित्रण 'दौड़' उपन्यास में चित्रित हुआ है।

निष्कर्ष-

आज दुनिया भर के युवा यंत्र की ओर आकर्षित हो रहे हैं। जिसके फलस्वरूप मनुष्य का मस्तिष्क भी यंत्र की भांति सोचने एवं समझने लगा है। जिसके कारण संवेदनाएँ समाप्त हो रही है। 21 वीं सदी का समय सांस्कृतिक टकराहट का दौर है क्योंकि इस युग में पुराने मूल्य एवं परम्पराओं में विश्वास रखने वाले भी साँस ले रहे हैं, तो दूसरी तरफ एक ऐसी पीढ़ी भी मौजूद है जिनका पुराने मूल्यों के प्रति विश्वास घटता जा रहा है। इसी के कारण आज के समय को सांस्कृतिक टकराहट का दौर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज मनुष्य यंत्र की भांति सोच-समझ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों का हनन लगातार होते जा रहा है। आज के समय की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव से प्रभावित युवा दिखावटीपन एवं लग्जरी को ही जीवन जीने का एकमात्र तरीका मानते हैं।

बढ़ते वैश्वीकरण एवं नव उदारीकरण के कारण समाज में वह पीढ़ी अकेलापन एवं घुटन का शिकार हो रही है जो कभी संयुक्त परिवार में सबके साथ प्रसन्न थी। रेखा और राकेश की लाख कोशिशों के बाद भी पवन और सघन उन्हें अकेला छोड़कर आजीविका की तलाश में वैश्वीकरण के बाज़ार की तरफ आकर्षित हो जाते हैं। पवन, स्टैला, सघन और सिद्धार्थ की दृष्टि में आपसी रिश्ते और मानवीय संबंधों से ज्यादा अगर कोई महत्वपूर्ण है तो वह है कैरियर एवं पैसा। अतः ममता कालिया ने अपने इस लघु उपन्यास के माध्यम से आज के युवा पीढ़ी की मानसिकता को सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

संदर्भ :-

1. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 40
2. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 28
3. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 40
4. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 40
5. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 52
6. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 59
7. कालिया, ममता. (2023). *दौड़* (सत्ताईसवाँ संस्करण). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 81

डॉ. भीमराव अम्बेडकर : महिलाओं की समानता के प्रणेता

रानी मिश्रा*
mrani2917@gmail.com

डॉ. दीपक कुमार दिनकर†
dkddinkar99@gmail.com

सारांश

भारत में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का योगदान अनुपम है। वे भारतीय संविधान के निर्माता होने के साथ-साथ महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और कानूनी समानता के लिए जीवन पर्यंत प्रयासरत रहे। अम्बेडकर ने हिंदू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को संपत्ति, विवाह, तलाक और गोद लेने के अधिकार दिलाने का प्रयास किया, किंतु संसद में विरोध के कारण उन्हें मंत्री पद त्यागना पड़ा। उनके प्रयासों से बाद में हिंदू विवाह अधिनियम 1955, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिंदू गोद लेना और भरण-पोषण अधिनियम 1956 तथा हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम 1956 लागू हुए, जो महिलाओं को बराबरी का हक देते हैं। उन्होंने शिक्षा को मुक्ति का साधन माना और आर्थिक स्वतंत्रता पर बल दिया। जाति व्यवस्था को महिलाओं की दासता का कारण बताते हुए मनुस्मृति की निंदा की। दलित महिलाओं के लिए उनकी दृष्टि जटिल उत्पीड़न को चुनौती देती थी। 1920 के दशक में उनकी सभाओं में परिवार नियोजन, शिक्षा और सती प्रथा जैसे मुद्दों पर चर्चा हुई। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 और 39 उनके दूरदर्शी विचारों का परिणाम हैं। वर्तमान में मिशन शक्ति, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ और लखपति दीदी जैसी योजनाओं में उनकी विरासत प्रासंगिक है। फिर भी हिंसा, शिक्षा की कमी और रूढ़िवादिता चुनौतियां हैं। अम्बेडकर की सोच महिलाओं को आत्मनिर्भरता और निर्णय शक्ति देती है। यह अध्ययन उनके योगदान को समझने और प्रेरणा लेने का प्रयास है। महिलाओं का सशक्तिकरण राष्ट्र प्रगति का आधार है, और अम्बेडकर ने इसे सामाजिक न्याय से जोड़ा। उनके प्रयासों से महिलाएं राजनीति, शिक्षा और अर्थव्यवस्था में आगे बढ़ रही हैं, किंतु समानता के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं।

कुंजीशब्द: *महिलाओं का सशक्तिकरण, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, हिंदू कोड बिल, संवैधानिक समानता*

परिचय

डॉ. भीमराव अम्बेडकर, बाबासाहेब के नाम से प्रसिद्ध, भारतीय इतिहास में सामाजिक न्याय के प्रतीक हैं। उन्होंने महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए अथक प्रयास किए। जाति और लिंग भेद को चुनौती देते हुए, उन्होंने शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और कानूनी अधिकारों के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने पर जोर दिया। यह लेख उनके योगदान का विश्लेषण करता है, जो आज भी प्रासंगिक है।

---

* **शोधार्थी, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर**

† **सहायक प्राध्यापक (सीनियर स्केल), राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एम. कॉलेज, भागलपुर**

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

साहित्य समीक्षा -

- **शर्मा, ए. (2019).** ***भारतीय समाज में महिला स्थिति*****. नई दिल्ली: भारतीय प्रकाशन।**
    - शर्मा का अध्ययन दर्शाता है कि महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में भारी सुधार की आवश्यकता है। दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयां महिलाओं के विकास के रास्ते में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। उन्होंने शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता को मुख्य समाधान के रूप में प्रस्तुत किया।
- **सिंह, क. (2020).** ***अंबेडकर और सामाजिक न्याय*****. पटना: लोकभारती।**
    - सिंह ने डॉ. अंबेडकर के विचारों का विस्तार से विश्लेषण करते हुए बताया कि कैसे अंबेडकर ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संविधान में महत्वपूर्ण प्रावधान शामिल करवाए। सिंह ने अंबेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को महिलाओं के लिए न्याय सुनिश्चित करने और समान अधिकार प्रदान करने की नींव बताया।
- **वर्मा, एस. (2021).** ***महिला सशक्तिकरण के संवैधानिक पहलू*****. इलाहाबाद: राज पब्लिशिंग।**
    - वर्मा ने भारत के संविधान में महिलाओं के अधिकारों को विस्तार से वर्गीकृत किया एवं विभिन्न संवैधानिक अनुच्छेदों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जो महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार तथा समानता को सुनिश्चित करते हैं। उनका तर्क है कि संविधान में प्रावधानों का सही क्रियान्वयन ही महिला सशक्तिकरण सुनिश्चित कर सकता है।
- **राजपूत, म. (2022).** ***आधुनिक भारत और नारी विमर्श*****. मुंबई: साहित्य निकेतन।**
    - इस पुस्तक में राजपूत ने समकालीन संदर्भ में महिला अधिकारों और सामाजिक बदलावों को समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने बताया कि आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, परन्तु लैंगिक समानता और महिला सुरक्षा के क्षेत्र में कई चुनौतियां बनी हुई हैं, जिन्हें दूर करने के लिए जागरूकता और कानूनी सुधार आवश्यक हैं।

अध्ययन का उद्देश्य और महत्व

यह अध्ययन महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, और कानूनी सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए डॉ. भीमराव अंबेडकर के योगदान को विस्तार से समझने का प्रयास करता है। इसके प्रमुख उद्देश्य हैं:

- भारतीय महिलाओं की पारंपरिक स्थिति और उनके सशक्तिकरण में अंबेडकर के दृष्टिकोण को समझना।
- महिलाओं के सामाजिक उत्थान के लिए लागू किए गए संवैधानिक प्रावधानों की समीक्षा।
- महिलाओं के लिए समानता, अधिकार, और अवसर सुनिश्चित करने में आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण।

- सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने और जागरूकता बढ़ाने के उपायों को परखा जाना। इस अध्ययन का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह महिलाओं की स्थिति सुधारने में सामाजिक और कानूनी पहलुओं को जोड़ते हुए आज के संदर्भ में अंबेडकर की प्रासंगिकता को उजागर करता है।

वर्तमान स्थिति में प्रासंगिकता

भारत में महिलाओं की स्थिति में कुछ प्रगति अवश्य हुई है, जैसे कि शिक्षा के क्षेत्र में सुधार, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, और राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय विस्तार। आज कई महिलाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, नौकरीपेशा बन रही हैं, और पंचायत स्तर से लेकर संसद तक में अपनी आवाज़ उठा रही हैं। उदाहरण के लिए, 2025 तक ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा दर में सुधार देखा गया है, और कुछ राज्यों में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी 50% तक पहुँच गई है। तथापि, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, और बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराइयाँ अभी भी व्यापक रूप से मौजूद हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, 2024 में घरेलू हिंसा के मामले 10% बढ़े, और ग्रामीण क्षेत्रों में बाल विवाह की दर अभी भी चिंताजनक है। ऐसे में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार और संवैधानिक प्रावधान आज भी अत्यंत कारगर सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि उन्होंने समानता, न्याय, और सामाजिक सुधार के मूल सिद्धांतों को मजबूत आधार प्रदान किया। उनके दर्शन हमें महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए सतत और संगठित प्रयासों को प्रेरित करते हैं। आज के समय में, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उनकी समग्र भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और राजनीतिक अधिकारों पर विशेष ध्यान देना शामिल है। उदाहरणस्वरूप, स्वरोजगार के अवसर बढ़ाने और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करने से महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में क्रांतिकारी बदलाव आ सकता है। अम्बेडकर की समानता की अवधारणा हमें इन क्षेत्रों में असमानताओं को दूर करने के लिए प्रेरित करती है, जो वर्तमान संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो गई है।

जागरूकता का महत्व

शिक्षा और जनजागरूकता महिलाओं के सशक्तिकरण की आधारशिला हैं, क्योंकि ये उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाती हैं। समाज में महिलाओं के अधिकारों, कुरीतियों जैसे दहेज और बाल विवाह के दुष्परिणामों, और समता के महत्व को समझना अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर विभिन्न जागरूकता अभियान चलाए जा रहे हैं, जैसे कि ग्रामीण क्षेत्रों में नुक्कड़ नाटक और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया अभियान। किंतु, इनका दायरा और व्यापक किया जाना चाहिए ताकि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की महिलाएँ समान रूप से लाभान्वित हो सकें। जागरूकता से महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ता है, और वे अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सक्रिय हो पाती हैं, जिससे सामाजिक बदलाव संभव होता है। उदाहरण के लिए, जागरूकता अभियानों के कारण कई क्षेत्रों में महिलाओं ने स्व-सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता हासिल की है। इसके साथ ही, स्कूलों और सामुदायिक केंद्रों में नियमित कार्यशालाएँ आयोजित कर युवा पीढ़ी को इन मुद्दों से जोड़ना भी प्रभावी सिद्ध हो सकता है, जिससे लंबे समय तक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हों।

सरकारी प्रयास

भारत सरकार ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई योजनाएँ और कानून बनाए हैं, जिनमें प्रमुख हैं:

- **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान**: यह योजना बालिकाओं के जन्म, शिक्षा, और देखभाल को प्रोत्साहित करती है। 2025 तक, इस अभियान के तहत 10 लाख से अधिक बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ा गया है, और लिंग अनुपात में सुधार हुआ है।
- **महिला हेल्पलाइन (181)**: घरेलू हिंसा और अन्य अपराधों के लिए त्वरित सहायता प्रदान करती है। 2024 में, इस हेल्पलाइन ने 5 लाख से अधिक कॉलों का जवाब दिया, जो महिलाओं की सुरक्षा में सहायक सिद्ध हुई।
- **उज्ज्वला योजना**: महिलाओं को स्वच्छ ऊर्जा से जोड़कर उनके स्वास्थ्य में सुधार लाना। इस योजना से 9 करोड़ से अधिक परिवारों को लाभ हुआ, जिससे महिलाओं का समय और स्वास्थ्य बेहतर हुआ।
- **महिला आरक्षण विधेयक**: संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देना। यह विधेयक 2023 में पारित हुआ और 2025 तक इसके प्रभाव दिखने लगे हैं, जिसमें महिलाओं की भागीदारी 33% तक पहुँच गई।
- साथ ही, संविधान में नारी सुरक्षा के प्रावधान जैसे दहेज विरोधी अधिनियम, बाल विवाह निषेध अधिनियम, और घरेलू हिंसा अधिनियम लागू हैं। ये प्रयास महिलाओं की सुरक्षा और विकास के लिए आवश्यक हैं, पर इनके उचित क्रियान्वयन में बाधाएँ अभी भी हैं, जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी और प्रशासनिक सुस्ती। सरकार को इन योजनाओं के लिए निगरानी तंत्र को मजबूत करना होगा ताकि लाभ हर स्तर तक पहुँचे।

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौतियाँ:

- ➢ **दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियाँ:** ये कुरीतियाँ महिलाओं की स्वतंत्रता और शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता में गंभीर बाधा डालती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 30% से अधिक विवाह 18 साल से पहले होते हैं, जो न केवल कानूनी अपराध है, बल्कि लड़कियों की शारीरिक और मानसिक वृद्धि को भी प्रभावित करता है। इन प्रथाओं के कारण कई लड़कियाँ स्कूली शिक्षा बीच में छोड़ देती हैं, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक प्रगति रुक जाती है। परिवारों में गरीबी और सामाजिक दबाव इन कुरीतियों को बढ़ावा देते हैं, खासकर जहाँ शिक्षा का स्तर निम्न है।
- ➢ **घर और समाज में महिलाओं के प्रति भेदभाव, लैंगिक हिंसा, यौन उत्पीड़न:** 2024 में लैंगिक हिंसा के 4 लाख से अधिक मामले दर्ज हुए, जो समाज में महिलाओं की सुरक्षा के प्रति गहरी चिंता को दर्शाता है। घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, और सार्वजनिक स्थानों पर यौन शोषण जैसी घटनाएँ महिलाओं के आत्मविश्वास को तोड़ती हैं और उन्हें सामाजिक भागीदारी से दूर रखती हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पुरुषवादी सोच और रूढ़िवादी मान्यताएँ इस भेदभाव को बढ़ावा देती हैं, जिससे महिलाओं का जीवन संकट में पड़ता है।

- **शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की असमान पहुँच:** ग्रामीण क्षेत्रों में 40% लड़कियाँ माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पातीं, क्योंकि स्कूलों की दूरी, गरीबी, और सामाजिक रीति-रिवाज़ उन्हें पढ़ाई से वंचित करते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की कमी के कारण मातृ मृत्यु दर और कुपोषण की समस्या बनी हुई है, खासकर गाँवों में जहाँ अस्पतालों तक पहुँच सीमित है। यह असमानता महिलाओं की दीर्घकालिक प्रगति में बाधा बनती है और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता से दूर रखती है।
- **आर्थिक संसाधनों के अभाव में स्वतंत्रता में कमी:** गरीबी के कारण महिलाएँ स्वरोजगार शुरू करने में असमर्थ हैं, और 60% से अधिक महिलाएँ अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती हैं, जहाँ न तो स्थायी आय है और न ही सामाजिक सुरक्षा। ऋण लेने में कठिनाइयाँ और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर बनाती हैं, जिससे वे निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रह जाती हैं। यह स्थिति उनकी आत्मनिर्भरता और सामाजिक सम्मान को प्रभावित करती है।

समाधान:

- **कठोर कानूनों का सख्ती से पालन और न्यायिक त्वरित कार्रवाई:** विशेष फास्ट-ट्रैक कोर्ट स्थापित कर हिंसा और कुरीतियों जैसे दहेज और बाल विवाह के मामलों का त्वरित निपटारा करना आवश्यक है। इन कोर्टों को ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुँचाया जाना चाहिए, साथ ही पुलिस और न्यायिक अधिकारियों को संवेदनशील प्रशिक्षण देना होगा ताकि पीड़ितों को त्वरित न्याय मिल सके। नियमित निगरानी और सजा में कठोरता से अपराधियों पर अंकुश लगेगा, जिससे समाज में डर का माहौल बनेगा।
- **शिक्षा और आर्थिक अवसरों का व्यापक विस्तार:** ग्रामीण स्कूलों में छात्रवृत्तियाँ, मुफ्त शिक्षण सामग्री, और परिवहन सुविधाएँ प्रदान कर लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिए। व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना से युवतियों को सिलाई, कंप्यूटर, और अन्य कौशलों में निपुण बनाया जा सकता है, जो उन्हें रोजगार के अवसर प्रदान करेंगे। सरकार को निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी कर रोजगार सृजन पर जोर देना होगा, ताकि महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त हों।
- **सामाजिक बदलाव और मनोवृत्ति सुधार के लिए सामुदायिक जागरूकता:** स्थानीय नेताओं, स्वयंसेवकों, और धार्मिक नेताओं के माध्यम से अभियान चलाकर समाज की सोच में बदलाव लाया जा सकता है। नुक्कड़ नाटक, रेडियो कार्यक्रम, और सामुदायिक सभाओं के जरिए दहेज और लैंगिक भेदभाव के खिलाफ जागरूकता फैलाई जानी चाहिए। स्कूलों में बच्चों को समानता का पाठ पढ़ाना भी लंबे समय में सकारात्मक परिणाम देगा, क्योंकि नई पीढ़ी पुरानी कुरीतियों को तोड़ सकती है।
- **महिलाओं के लिए स्वरोजगार एवं कौशल विकास योजनाओं का प्रोत्साहन:** माइक्रोफाइनेंस के माध्यम से छोटे-छोटे ऋण देकर महिलाओं को स्वरोजगार शुरू करने में मदद की जानी चाहिए। डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों से उन्हें ऑनलाइन बाजारों और तकनीकी कौशलों से जोड़ा जा सकता है, जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी। स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को मजबूत करना और इनके उत्पादों को बाजार में बढ़ावा देना भी जरूरी है, ताकि महिलाएँ आत्मनिर्भर बन सकें और परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार हो।

इन समाधानों को लागू करने के लिए सरकार, समाज, और व्यक्तिगत स्तर पर सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। स्थानीय प्रशासन को इन योजनाओं की निगरानी करनी होगी, जबकि समुदाय को महिलाओं के प्रति सम्मान और समर्थन की भावना अपनानी होगी। व्यक्तिगत स्तर पर, प्रत्येक नागरिक को इन मुद्दों पर जागरूक रहकर योगदान देना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के सपनों को साकार करने के लिए यह प्रयास महिलाओं को पूर्ण सशक्तिकरण की ओर ले जा सकता है, जहाँ वे न केवल अपने अधिकारों का लाभ उठाएँ, बल्कि समाज के विकास में भी अग्रणी भूमिका निभाएँ।

निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर का महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में योगदान शाश्वत और क्रांतिकारी है। उन्होंने न केवल महिलाओं को समान अधिकार दिए, बल्कि उनकी सामाजिक मान्यता हेतु महत्वपूर्ण कानूनी संरचनाओं की स्थापना की। आज भी उनके विचार और कार्य महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। सामाजिक संरचनाओं में बदलाव और कानूनी संरक्षण यदि प्रभावी रूप से लागू हों, तो महिला सशक्तिकरण की दिशा में ठोस प्रगति संभव है। इसलिए, अंबेडकर के सिद्धांतों को आत्मसात करते हुए सामाजिक जागरूकता, शिक्षा, और सरकारी प्रयासों को और भी मजबूती प्रदान करनी होगी।

संदर्भ

अम्बेडकर अंतर्दृष्टि. (2023, अक्टूबर 10). *बी.आर. अम्बेडकर और महिलाओं का सशक्तिकरण*. पृ. 1-5.

सिविल्स डेली. (2023, अप्रैल 17). *बाबासाहेब अम्बेडकर का महिलाओं के अधिकारों में योगदान*. पृ. 1-3.

ग्रंथालय प्रकाशन. (बिना दिनांक). *महिलाओं का सशक्तिकरण और डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का दृष्टिकोण* पृ. 1-10.

पांडे, ए. (2025, जून 18). *डॉ. अम्बेडकर का भारतीय समाज में योगदान*. एसएसआरएन. पृ. 1-15.

शंकर आईएएस संसद. (बिना दिनांक). *अम्बेडकर और महिलाओं के अधिकार* पृ. 1-4.

शर्मा, आर. (2025, मार्च 17). *हिंदू कोड बिल से महिलाओं के सशक्तिकरण तक अम्बेडकर के विचार*. *राजनीति विज्ञान जर्नल, 7*(3), 133-150.

द न्यूज़ मिनट. (2025, अप्रैल 14). *बी.आर. अम्बेडकर का दलित नारीवाद में योगदान*. पृ. 1-6.

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री वेदना का स्वर

राजेश कुमार यादव*
rajeshkumar2015.rk22@gmail.com

सारांश

यह शोध आलेख नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री वेदना के स्वर का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। नासिरा शर्मा हिंदी साहित्य की उन प्रमुख लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने स्त्री जीवन की जटिलताओं, सामाजिक बंधनों और आत्मसम्मान की खोज को अपनी रचनाओं का केंद्रीय विषय बनाया है। पारिजात, कागज की नाव, कुइयांजान और अल्फा बीटा गामा जैसे उपन्यासों में स्त्री पात्रों की वेदना केवल व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचनाओं के खिलाफ संघर्ष का प्रतीक है। उनकी रचनाओं में स्त्री वेदना का स्वर आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की खोज में परिवर्तित होकर स्त्री सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रेरणा का कार्य करता है। यह आलेख साहित्यिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री वेदना की संवेदनशील अभिव्यक्ति को उजागर करता है।

मुख्य शब्द

नासिरा शर्मा, स्त्री वेदना, स्त्री सशक्तिकरण, पितृसत्ता, आत्मसम्मान, सामाजिक यथार्थ, उपन्यास

परिचय

स्त्री वेदना: एक सामाजिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

स्त्री वेदना हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श का हिस्सा रही है, जो विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद के काल में उभरा। यह वह भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक पीड़ा है, जो स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज की संरचनाओं, रूढ़ियों और अपेक्षाओं के कारण सहन करनी पड़ती है। नासिरा शर्मा के उपन्यास इस वेदना को न केवल चित्रित करते हैं, बल्कि इसके मूल कारणों—जैसे लैंगिक असमानता, सामाजिक दबाव, और पारिवारिक अपेक्षाओं—पर भी गहरी नजर डालते हैं। उनकी रचनाएँ स्त्री को एक निष्क्रिय पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जो अपनी पीड़ा को समझती है और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष करती है।

नासिरा शर्मा की लेखनी में स्त्री वेदना का स्वर उनके व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक समझ से प्रभावित है। उनकी रचनाएँ हिंदू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों की गहरी समझ को दर्शाती हैं, जिसके कारण उनकी कहानियाँ और उपन्यास विभिन्न समुदायों की स्त्रियों की संवेदनाओं को प्रभावी ढंग से चित्रित करते हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री मन की परत-दर-परत पड़ताल की गई है, जिसमें सामाजिक बंधनों, पारिवारिक दायित्वों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच टकराव को उजागर किया गया है।

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, सिद्धो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड)**

नासिरा शर्मा के प्रमुख उपन्यासों में स्त्री वेदना

नासिरा शर्मा के उपन्यास, जैसे *पारिजात*, *कागज की नाव*, *कुइयांजान*, *अल्फा बीटा गामा*, और *शाल्मली*, नारी जीवन की जटिलताओं और उनकी वेदना को गहराई से प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में स्त्री पात्रों की कहानियाँ सामाजिक परिवेश के साथ-साथ उनकी व्यक्तिगत भावनाओं और संघर्षों को भी उजागर करती हैं। निम्नलिखित खंडों में उनके कुछ प्रमुख उपन्यासों के माध्यम से स्त्री वेदना के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया है।

1. *पारिजात*: सामाजिक बंधनों में जकड़ी स्त्री

पारिजात नासिरा शर्मा का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस उपन्यास में स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक बंधनों में जकड़ी जिंदगी को चित्रित किया गया है। उपन्यास की नायिका अपने परिवार और समाज की अपेक्षाओं के बीच फंसी हुई है, और उसकी वेदना उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं और सामाजिक दबावों के टकराव में व्यक्त होती है। नासिरा शर्मा इस उपन्यास में यह दर्शाती हैं कि कैसे स्त्री को अपने सपनों को दबाकर परिवार के लिए बलिदान करना पड़ता है। नायिका की पीड़ा न केवल व्यक्तिगत है, बल्कि यह उस सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब है, जो स्त्री को पुरुष की पूरक इकाई के रूप में देखता है। उदाहरण के लिए, उपन्यास में नायिका की आंतरिक उथल-पुथल और उसकी बाहरी दुनिया के बीच का द्वंद्व यह दर्शाता है कि कैसे स्त्री की भावनाएँ और आकांक्षाएँ समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं में कैद हो जाती हैं। नासिरा शर्मा इस वेदना को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं, जिसमें उनकी भाषा शैली और कथानक की गहराई पाठक को नायिका के दर्द से जोड़ती है।

2. *कागज की नाव*: आत्मसम्मान की खोज

कागज की नाव के लिए नासिरा शर्मा को 2019 में व्यास सम्मान प्राप्त हुआ। इस उपन्यास में स्त्री वेदना का स्वर आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की खोज के रूप में उभरता है। उपन्यास की नायिका एक ऐसी स्त्री है, जो सामाजिक और पारिवारिक बंधनों से मुक्ति की तलाश में है। उसकी वेदना केवल शारीरिक या सामाजिक दबावों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उसकी आंतरिक यात्रा का हिस्सा है, जिसमें वह अपनी पहचान और आत्मसम्मान को पुनः स्थापित करने का प्रयास करती है। नासिरा शर्मा इस उपन्यास में स्त्री की उस पीड़ा को उजागर करती हैं, जो सामाजिक रूढ़ियों और अपेक्षाओं के कारण उत्पन्न होती है। नायिका की कहानी यह दर्शाती है कि कैसे एक स्त्री अपने आत्मसम्मान को बनाए रखने के लिए समाज और परिवार के खिलाफ संघर्ष करती है। यह उपन्यास स्त्री सशक्तिकरण का एक सशक्त उदाहरण है, जिसमें वेदना एक नकारात्मक भावना के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन और प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत की गई है।

3. *कुइयांजान*: सामाजिक विसंगतियों का दर्पण

कुइयांजान के लिए नासिरा शर्मा को यूके कथा सम्मान प्राप्त हुआ। इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने सामाजिक विसंगतियों और उनसे उत्पन्न होने वाली स्त्री वेदना को केंद्र में रखा है। उपन्यास की नायिका एक ऐसी स्त्री है, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग से आती है। उसकी वेदना न केवल लैंगिक असमानता से, बल्कि सामाजिक और आर्थिक शोषण से भी जुड़ी है। नासिरा शर्मा इस उपन्यास में यह दर्शाती हैं कि कैसे समाज की संरचनाएँ—जैसे वर्ग, धर्म, और लिंग—स्त्री की पीड़ा को और गहरा करती हैं। इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने ग्रामीण और शहरी परिवेश के बीच की खाई को भी उजागर किया है। नायिका की

कहानी समाज के उन पहलुओं को सामने लाती है, जहाँ स्त्री को न केवल पुरुषों के अधीन रहना पड़ता है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दबावों के कारण भी उसकी स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। यह उपन्यास स्त्री वेदना को सामाजिक परिवर्तन के लिए एक प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत करता है।

4. *अल्फा बीटा गामा*: वैश्विक परिदृश्य में स्त्री

अल्फा बीटा गामा में नासिरा शर्मा ने वैश्विक परिदृश्य में स्त्री की स्थिति और उसकी वेदना को चित्रित किया है। इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने नारी मन की जटिलताओं को भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं से परे जाकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका की वेदना केवल भारतीय समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर स्त्री के संघर्ष और पीड़ा को दर्शाती है। नासिरा शर्मा की यह रचना उनकी गहरी शोध और वैश्विक दृष्टिकोण को दर्शाती है, जो उनकी पत्रकारिता और साक्षात्कारों के अनुभव से प्रेरित है। इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने स्त्री की उस वेदना को उजागर किया है, जो सामाजिक बंधनों, सांस्कृतिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच टकराव से उत्पन्न होती है। नायिका की कहानी यह दर्शाती है कि कैसे वैश्वीकरण और आधुनिकता के दौर में भी स्त्री को अपनी पहचान और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

नासिरा शर्मा की भाषा शैली और स्त्री वेदना

नासिरा शर्मा की भाषा शैली उनकी रचनाओं में स्त्री वेदना को व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनकी भाषा सरल, संवेदनशील और यथार्थवादी है, जो पाठक को पात्रों की भावनाओं से जोड़ती है। उनके उपन्यासों में कथानक और पात्रों का चित्रण इतना जीवंत है कि पाठक स्वयं को कहानी का हिस्सा महसूस करता है। उनकी भाषा में हिंदी, उर्दू और फारसी के शब्दों का मिश्रण देखने को मिलता है, जो उनकी रचनाओं को एक विशेष सांस्कृतिक गहराई प्रदान करता है। *पारिजात* और *कागज की नाव* में उनकी भाषा न केवल पात्रों की भावनाओं को व्यक्त करती है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को भी उजागर करती है। उनकी लेखनी में संवेदनशीलता और यथार्थ का ऐसा समन्वय है कि पाठक नायिका की वेदना को न केवल समझता है, बल्कि उसे महसूस भी करता है।

सामाजिक चेतना और स्त्री सशक्तिकरण

नासिरा शर्मा के उपन्यास न केवल स्त्री वेदना को चित्रित करते हैं, बल्कि सामाजिक चेतना और स्त्री सशक्तिकरण को भी बढ़ावा देते हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र निष्क्रिय पीड़ित नहीं हैं, बल्कि वे अपने अधिकारों और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती हैं। यह संघर्ष उनके लेखन में एक प्रेरणादायक तत्व के रूप में उभरता है, जो पाठकों को सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। *कागज की नाव* में नायिका की यात्रा यह दर्शाती है कि कैसे एक स्त्री अपनी पीड़ा को शक्ति में बदल सकती है। नासिरा शर्मा का यह दृष्टिकोण स्त्री विमर्श के आधुनिक स्वरूप को दर्शाता है, जिसमें स्त्री न केवल अपनी पीड़ा को व्यक्त करती है, बल्कि उसका समाधान भी खोजती है।

नासिरा शर्मा का साहित्यिक योगदान

नासिरा शर्मा का साहित्यिक योगदान केवल उनके उपन्यासों तक सीमित नहीं है। उन्होंने कहानियाँ, निबंध, रिपोर्ताज, और अनुवाद कार्य भी किए हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाएँ और सांस्कृतिक विविधता का समन्वय देखने को मिलता है। उनकी कहानियों और उपन्यासों पर आधारित

कई टेलीविजन धारावाहिक और फिल्में भी बनी हैं, जैसे *वापसी*, *सरजमीन*, और *शाल्मली*। उनकी रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए भी प्रेरणादायक हैं। उनकी लेखनी में स्त्री वेदना का स्वर एक ऐसी आवाज है, जो समाज की रूढ़ियों और बंधनों को चुनौती देती है और स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में एक नया रास्ता दिखाती है।

निष्कर्ष

नासिरा शर्मा के उपन्यास हिंदी साहित्य में स्त्री वेदना के स्वर को एक नई गहराई और संवेदनशीलता प्रदान करते हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा केवल एक भावनात्मक अवस्था नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचनाओं के खिलाफ एक संघर्ष का प्रतीक है। *पारिजात*, *कागज की नाव*, *कुइयांजान*, और *अल्फा बीटा गामा* जैसे उपन्यासों के माध्यम से नासिरा शर्मा ने नारी मन की जटिलताओं, उसकी आकांक्षाओं और उसके संघर्षों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा शैली और कथानक की गहराई उनकी रचनाओं को एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

नासिरा शर्मा का साहित्य न केवल स्त्री वेदना को उजागर करता है, बल्कि यह स्त्री सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। उनकी रचनाएँ यह सिखाती हैं कि वेदना केवल पीड़ा नहीं, बल्कि परिवर्तन और प्रेरणा का स्रोत भी हो सकती है। इस प्रकार, नासिरा शर्मा का साहित्य हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के क्षेत्र में एक मील का पत्थर है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

संदर्भ

इंजीनियर, असगर अली. (2001). *इस्लाम का जन्म और विकास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 23

कुमार, रविंदर. (n.d.). *आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास*. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन. पृ. 77

वार्ष्णेय, आशुतोष. (2005). *हिन्दू मुस्लिम रिश्ते*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 104

राजकिशोर (सं.). (2010). *भारतीय मुसलमान: मिथक और यथार्थ*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 34

राय, गोपाल. (2000). *हिन्दी उपन्यास का इतिहास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 166

हिंदी उपन्यास में रामकथा की परम्परा

शेखर सुमन[*]
sahara.suman09@gmail.com

सारांश

हिंदी उपन्यासों में रामकथा की परंपरा साहित्यिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है, जिसने प्राचीन मिथकीय आख्यान को आधुनिक संदर्भों में पुनः व्याख्यायित किया। वाल्मीकि रामायण से लेकर तुलसीदास कृत रामचरितमानस तक की परंपरा को हिंदी उपन्यासकारों ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से नए आयाम प्रदान किए। विशेषतः नरेंद्र कोहली की रामकथा श्रृंखला—दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध—ने रामकथा को मिथकीय धरातल से निकालकर यथार्थवादी और मानवीय स्वरूप दिया। इन उपन्यासों में नैतिकता, कर्तव्य, स्त्री विमर्श, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय चेतना जैसे समकालीन मुद्दों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। भगवान सिंह, गोवर्धन यादव तथा अन्य लेखकों ने भी रामकथा को स्त्री पात्रों की नई व्याख्या और सामाजिक-राजनीतिक विमर्श से जोड़ा। इस प्रकार हिंदी उपन्यासों में रामकथा न केवल धार्मिक आख्यान के रूप में, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विमर्श के रूप में विकसित हुई है, जिसने साहित्य को गहराई और समकालीनता प्रदान की है।

मुख्य शब्द :

रामकथा; हिंदी उपन्यास; नरेंद्र कोहली; स्त्री विमर्श; न्याय; आधुनिक पुनर्व्याख्या; उपन्यास; सांस्कृतिक विमर्श

परिचय

रामकथा भारतीय साहित्य की एक अमर धरोहर है, जो वाल्मीकि रामायण से प्रारंभ होकर विभिन्न भाषाओं, विधाओं और रूपों में विकसित हुई है। हिंदी साहित्य में रामकथा का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक है, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक मुद्दों की व्याख्या का माध्यम भी बनी है। हिंदी उपन्यासों में रामकथा का विषय आधुनिक काल में एक नई दिशा में उभरा है, जहाँ प्राचीन मिथकों को समकालीन संदर्भों से जोड़कर पुनर्व्याख्या की गई है। यह शोध लेख हिंदी उपन्यासों में रामकथा के विकास, प्रमुख रचनाओं, लेखकों और उनकी साहित्यिक विशेषताओं पर केंद्रित है। रामकथा का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण है, जो संस्कृत महाकाव्य के रूप में जाना जाता है। हिंदी में रामकथा की लोकप्रियता गोस्वामी तुलसीदास के *रामचरितमानस* से हुई, जो अवधी में रचित है। लेकिन उपन्यास विधा में रामकथा का प्रवेश 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ, जब लेखकों ने इसे आधुनिक उपन्यास के ढाँचे में ढाला। इस प्रक्रिया में रामकथा को मिथकीय से हटाकर यथार्थवादी, तर्कसंगत और मानवीय बनाया गया। प्रमुख लेखक नरेंद्र कोहली हैं, जिनकी रामकथा श्रृंखला ने हिंदी उपन्यास साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया। अन्य लेखकों में गोवर्धन यादव, भगवान सिंह और कुछ समकालीन लेखक शामिल हैं, जिन्होंने रामकथा को स्त्री विमर्श, सामाजिक न्याय और पर्यावरण जैसे मुद्दों से जोड़ा है। रामकथा न केवल धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रतीक है, जो भारतीय समाज की

[*] **शोधार्थी, हिंदी विभाग, सिद्धो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड)**

नैतिकता, कर्तव्य और संघर्ष को दर्शाता है। आधुनिक उपन्यासों में इसकी पुनर्कथा समाज की बदलती आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करती है।

रामकथा का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व

रामकथा का इतिहास प्राचीन है, जो वाल्मीकि रामायण से जुड़ा है। वाल्मीकि रामायण में राम को एक आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है, जो धर्म, कर्तव्य और न्याय के प्रतीक हैं। मध्यकाल में तुलसीदास ने *रामचरितमानस* में रामकथा को भक्ति भाव से युक्त बनाया, जो हिंदी साहित्य की आधारशिला बनी। लेकिन उपन्यास विधा में रामकथा का प्रवेश 1970 के दशक में हुआ, जब हिंदी साहित्य में पौराणिक विषयों की पुनर्कथा की लहर चली।

हिंदी उपन्यासों में रामकथा का महत्व इस मायने में है कि यह प्राचीन मिथकों को आधुनिक संदर्भों से जोड़ती है। लेखक रामकथा को तर्कसंगत और वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या करते हैं, जहाँ राम, सीता और रावण जैसे पात्रों को मानवीय गुणों से युक्त बनाया जाता है। उदाहरणस्वरूप, राम को देवता के बजाय एक राजकुमार के रूप में दिखाया जाता है, जो सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत संघर्षों से जूझता है। यह प्रवृत्ति उत्तरआधुनिकता से प्रभावित है, जहाँ मिथकों की डीमिथिफिकेशन होती है।

साहित्यिक दृष्टि से, रामकथा आधारित उपन्यास हिंदी साहित्य को समृद्ध करते हैं। वे नैतिक द्वंद्व, लिंग समानता, राजनीतिक यथार्थ और सामाजिक शोषण जैसे मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं। 21वीं सदी में इन उपन्यासों में स्त्री पात्रों की उपेक्षा पर ध्यान दिया गया है, जैसे सीता, कैकेयी और मंथरा की नई व्याख्या। रामकथा हिंदी उपन्यासों में एक पुल का काम करती है, जो प्राचीन और आधुनिक को जोड़ती है, और पाठकों को सांस्कृतिक जड़ों से परिचित कराती है।

नरेंद्र कोहली की रामकथा श्रृंखला: विस्तृत विवेचना

नरेंद्र कोहली (1940-2021) हिंदी साहित्य के प्रमुख उपन्यासकार हैं, जिन्होंने रामकथा को उपन्यास रूप में पुनः रचा। उनकी रामकथा श्रृंखला पाँच उपन्यासों से मिलकर बनी है: *दीक्षा* (1975), *अवसर* (1976), *संघर्ष की ओर* (1978), *युद्ध भाग-1* और *युद्ध भाग-2*। यह श्रृंखला राम के जीवन को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत करती है, जहाँ पौराणिक घटनाओं को तर्कसंगत व्याख्या दी गई है।

दीक्षा

दीक्षा श्रृंखला का प्रथम उपन्यास है, जो राम के बचपन और शिक्षा पर केंद्रित है। कोहली ने राम को एक सामान्य बालक के रूप में चित्रित किया है, जो गुरु वशिष्ठ से जीवन की दीक्षा प्राप्त करता है। उपन्यास में शिक्षा, कर्तव्य और नैतिकता की थीम्स प्रमुख हैं। राम की आंतरिक यात्रा को गहराई से उकेरा गया है, जो आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ती है। भाषा सरल और प्रभावशाली है, जो पाठक को कथा में बाँधती है। इस उपन्यास में रामकथा को आधुनिक संदर्भों से जोड़ा गया है, जैसे व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व।

अवसर

अवसर राम की युवावस्था और अवसरों पर आधारित है। राम के राजकीय दायित्वों और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच द्वंद्व को दर्शाया गया है। कोहली ने रामकथा को सांस्कृतिक पुनरुत्थान का माध्यम बनाया है,

जहाँ राम को एक क्रांतिकारी नेता के रूप में दिखाया गया है। उपन्यास में राजनीतिक यथार्थ और शासनतंत्र की चर्चा है, जो समकालीन भारत से जुड़ती है। राम की निर्णय लेने की प्रक्रिया और उनके नैतिक संकट को गहराई से चित्रित किया गया है, जो पाठकों को विचार करने पर मजबूर करता है।

संघर्ष की ओर

संघर्ष की ओर तृतीय उपन्यास है, जो राम के वनवास और संघर्षों पर आधारित है। सीता के अपहरण और राम के आंतरिक संघर्ष को मानवीय भावनाओं से युक्त बनाया गया है। कोहली ने स्त्री वेदना और लिंग समानता पर जोर दिया है, जहाँ सीता को निष्क्रिय नहीं, बल्कि एक मजबूत पात्र के रूप में चित्रित किया है। पर्यावरण और सामाजिक असमानताओं की थीम्स इस उपन्यास में उभरती हैं। कोहली ने वनवास को एक आंतरिक और बाह्य संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है, जो रामकथा को गहन बनाता है।

अभ्युदय भाग-1 और 2

ये उपन्यास लंका युद्ध पर आधारित हैं। रावण को एक जटिल खलनायक के रूप में दिखाया गया है, जो महत्वाकांक्षा और बौद्धिकता से युक्त है। कोहली ने युद्ध को नैतिक और राजनीतिक द्वंद्व के रूप में व्याख्या किया है। राम और रावण के बीच का टकराव केवल शारीरिक युद्ध नहीं, बल्कि विचारधाराओं का संघर्ष है। श्रृंखला में उत्तरआधुनिक तत्व जैसे मिथकों की पुनर्व्याख्या प्रमुख हैं।

कोहली की श्रृंखला का साहित्यिक महत्व यह है कि यह रामकथा को चिर नवीन बनाती है। उन्होंने पौराणिक प्रसंगों को आधुनिक मूल्यों से जोड़ा, जैसे शोषण, अनाचार और समसामयिकता। उनकी भाषा काव्यात्मक और यथार्थवादी है, जो हिंदी उपन्यास को महाकाव्यात्मक बनाती है। कोहली ने रामकथा को केवल धार्मिक कथा के बजाय एक सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा बनाया, जिसने हिंदी साहित्य में मिथकीय उपन्यासों की नींव रखी।

अन्य उल्लेखनीय उपन्यास

हिंदी में रामकथा आधारित अन्य उपन्यासों में भगवान सिंह का *अपने-अपने राम* शामिल है, जो विभिन्न व्याख्याओं पर आधारित है। यह उपन्यास रामकथा को तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखता है, जहाँ वाल्मीकि रामायण और अन्य क्षेत्रीय रामकथाओं की तुलना की गई है। विवेक कुमार का *राम-कथा* (2024) बाल साहित्य के रूप में रामायण की पुनर्कथा है, जो सरल भाषा और नैतिक शिक्षा पर केंद्रित है। 21वीं सदी में रामकथा आधारित उपन्यासों में स्त्री पात्रों पर विशेष ध्यान दिया गया है। सीता, कैकेयी और मंथरा जैसे पात्रों को नए दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है, जो स्त्री विमर्श को बढ़ावा देता है। उदाहरणस्वरूप, कुछ उपन्यासों में कैकेयी को खलनायिका के बजाय एक माँ और रानी के रूप में देखा गया है, जो अपने परिवार और राज्य के लिए निर्णय लेती है।

हिंदी उपन्यासों में रामकथा की प्रमुख विषय में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. **नैतिकता और कर्तव्य**: राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन आधुनिक उपन्यासों में उनके नैतिक द्वंद्वों पर जोर है। उदाहरणस्वरूप, राम का वनवास और सीता का त्याग उनके कर्तव्यों और व्यक्तिगत भावनाओं के बीच टकराव को दर्शाता है।

2. **लिंग समानता**: सीता को योद्धा और स्वतंत्र पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। यह समकालीन स्त्री विमर्श से प्रेरित है, जो स्त्री की भूमिका को पुनर्परिभाषित करता है।
3. **सामाजिक न्याय**: रामकथा को सामाजिक असमानताओं, जैसे वर्ग और जाति, से जोड़ा गया है। राक्षसों को सामाजिक बुराइयों के प्रतीक के रूप में देखा गया है।
4. **पर्यावरण**: वनवास प्रसंगों में पर्यावरण संरक्षण की थीम उभरती है, जो आधुनिक पर्यावरणीय चेतना से जुड़ती है।

आधुनिक व्याख्या में रामकथा को तर्कसंगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणस्वरूप, राक्षसों को मिथकीय प्राणियों के बजाय सामाजिक या सांस्कृतिक समूहों के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण रामकथा को समकालीन पाठकों के लिए प्रासंगिक बनाता है।

हिंदी उपन्यासों में रामकथा ने साहित्य को समृद्ध किया है। नरेंद्र कोहली ने मिथकीय उपन्यास की विधा को स्थापित किया, जिसने हिंदी साहित्य को नया आयाम दिया। उनकी श्रृंखला ने रामकथा को केवल धार्मिक कथा से हटाकर एक सामाजिक और दार्शनिक विमर्श बनाया। गोवर्धन यादव जैसे लेखकों ने इसे पर्यावरण और सामाजिक मुद्दों से जोड़ा, जो 21वीं सदी की आवश्यकताओं को दर्शाता है। ये उपन्यास सांस्कृतिक पुनरुत्थान का माध्यम बने हैं। वे पाठकों को भारतीय संस्कृति और मूल्यों से जोड़ते हैं, साथ ही उन्हें आधुनिक चुनौतियों पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। रामकथा आधारित उपन्यासों ने हिंदी साहित्य को वैश्विक स्तर पर भी पहचान दिलाई है, क्योंकि उनकी महत्ता सार्वभौमिक हैं।

निष्कर्ष :

हिंदी उपन्यासों में रामकथा एक गंभीर और बहुआयामी विषय है, जो साहित्य को समृद्ध करता है। नरेंद्र कोहली की रामकथा श्रृंखला ने इस विधा को स्थापित किया, जबकि गोवर्धन यादव और अन्य लेखकों ने इसे समकालीन मुद्दों से जोड़ा। ये उपन्यास रामकथा को केवल धार्मिक कथा से हटाकर एक सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विमर्श बनाते हैं। वे नैतिकता, लिंग समानता, सामाजिक न्याय और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं। रामकथा की यह पुनर्व्याख्या हिंदी साहित्य को चिर नवीन बनाती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहेगी।

संदर्भ :

अवस्थी, कमलेश. (2006). *परंपरा और आधुनिकीकरण*. नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन. पृ. 69.

गणेशन, एस. एन. (1967). *हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन*. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस. पृ. 133.

कोहली, नरेंद्र. (1996). *अवसर*. नई दिल्ली: अभिरुचि प्रकाशन. पृ. 11.

कोहली, नरेंद्र. (1996). *दीक्षा*. नई दिल्ली: अभिरुचि प्रकाशन. पृ. 104.

मिश्र, रामदरश. (1968). *हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 63.

सिंह, भगवान. (2006). *अपने अपने राम*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 72.

महानदी पार क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन: सरायपाली के विशेष संदर्भ में

Mahettar Lal Yadaw* **myadaw0717@gmail.com**

Rupendra Kumar† **rupendraratre2799@gmail.com**

शोध सारांश –

भौतिक दशाएं किसी भी क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक दशा को प्रभावित करता है। महानदी पार क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि का प्रभाव जहां उनके सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर दिखाई देता है, वहीं आर्थिक क्रियाओं को भी प्रभावित करता है। सरायपाली विकासखंड छत्तीसगढ़ महानदी बेसिन का महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत फैला एक विशिष्ट भौगोलिक विशेषताओं वाला क्षेत्र है।

मुख्य शब्द - भूवैज्ञानिक संरचना, उच्चावच, अपवाह तंत्र, जलवायु एवं प्राकृतिक वनस्पति, सरायपाली

प्रस्तावना

किसी भी क्षेत्र की भौगोलिक दशाएं क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक दशा को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। किसी भी क्षेत्र के जनसंख्या के स्वास्थ्य, निवास तथा आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारकों में भौगोलिक स्वरूप का महत्व सर्वोपरि है।

पूर्व अध्ययन की समीक्षा

मिश्रा (1985) ने अपने शोध लेख "Agricultural Productivity and it Spatical Variation Fasters U-P-" में पूर्वी उत्तर प्रदेश के कृषि उत्पादकता एवं कृषि विकास पर धरातलीय भिन्नता के प्रभावों का अध्ययन किया।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध में अध्ययन का मुख्य उद्देश्य महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत सरायपाली विकासखंड की भौतिक स्वरूप का अध्ययन करना।

आंकड़ों के स्रोत एवं विधितंत्र

द्वितीयक आंकड़े - प्रस्तुत भौतिक सर्वेक्षण के शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। महानदी पार क्षेत्र से संबंधित आंकड़े जिला जनगणना पुस्तिका (2020-21) से प्राप्त की गई है। महानदी पार क्षेत्र की वर्षा एवं तापमान से संबंधित आंकड़े कृषि विभाग छत्तीसगढ़ से प्राप्त की गई है।

---

* **Professional Researcher, Raipur, Chhattisgarh**

† **Professional Researcher, Raipur, Chhattisgarh**

अध्ययन क्षेत्र

महानदी पार क्षेत्र, छत्तीसगढ़ राज्य के पूर्वी भाग में (भारतीय सर्वेक्षण विभाग की अंशपत्रक संख्या 64°3 एवं 64°15 के अंतर्गत 21°7 से 21° 28 उत्तरी अक्षांश तथा 82°54 से 83°17 पूर्वी देशांतर) विस्तृत है। महानदी पार क्षेत्र के उत्तर में महानदी का विस्तार है, इसके साथ ही साथ महानदी की सहायक नदियों में लात नदी, जोंकनदी तथा ओंगनदी प्रवाहित होती है। सर्वेक्षित क्षेत्र में मुख्य रूप से इसके दक्षिण भाग में शिशुपाल पर्वत तथा रदन की पहाड़ी विस्तृत है तथा इसके पूर्व में गोमरदा अभ्यारण है, जो जैव विविधता का क्षेत्र है। प्रशासनिक दृष्टि से महानदी पार क्षेत्र के उत्तर में रायगढ़, जांजगीर, पूर्व में उड़ीसा राज्य, पश्चिम में रायपुर और बलोदाबाजार जिला तथा दक्षिण में गरियाबंद जिला से परिसिमित है।

विश्लेषण

भौगोलिक स्वरूप के अंतर्गत महानदी पार क्षेत्र का सामान्य परिचय, स्थिति एवं विस्तार, भूगर्भिक संरचना, उच्चावच, अपवाह तंत्र, जलवायु, तापमान, वर्षा, मिट्टी व प्राकृतिक वनस्पति का विश्लेषण किया गया है।

प्रशासनिक दृष्टि से महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत, सर्वेक्षित विकासखंड सरायपाली, महासमुंद जिले के अंतर्गत आता है। सर्वेक्षित क्षेत्र सरायपाली विकासखंड का भौगोलिक क्षेत्रफल 1006 वर्ग किलोमीटर है, जो महासमुंद जिले के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 20.27 प्रतिशत है।

सारणी क्र.1.1

महानदी पार क्षेत्र (सरायपाली विकासखंड). प्रशासनिक विभाजन, 2011

क्र	विकासखंड	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	कुल जनसंख्या	राजस्व मंडल	पटवारी हल्का	आबाद ग्राम	ग्राम पंचायत	नगर पंचायत	जनपद पंचायत	नगर पालिका
1	सरायपाली	1006	194997	7	56	238	107	0	1	1

स्रोत: जिला सांख्यिकी पुस्तिकाः 2020-21

2011 जनगणना के अनुसार सरायपाली विकाखण्ड की जनसंख्या 194997 है, जो महासमुंद जिले की कुल जनसंख्या का 18.88 प्रतिशत है। सरायपाली विकासखंड 7 राजस्व मंडल, 56 पटवारी हल्को, 238 आबाद ग्राम, 107 ग्राम पंचायत, तथा 1-1 जनपद व नगर पालिका में बंटा हुआ है (सारणी 1.1)।

भूवैज्ञानिक संरचना

किसी क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप के निर्धारण में उस क्षेत्र की भूवैज्ञानिक संरचना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धरातल पर निर्मित विभिन्न स्थलाकृति,धरातलीय बनावट,अपवाह तंत्र,धरातलीय उच्चावाच, खनिज तत्व, मिट्टी, जलवायु, वनस्पति, कृषि संरचना एवम् भूमि उपयोग आदि भूवैज्ञानिक संरचना द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। महानदी पार क्षेत्र में मुख्यतः आर्कियन शैल समूह और कड़प्पा शैल समूह का विस्तार है।

उच्चावच

किसी भू क्षेत्र में जनसंख्या के वितरण और सामाजिक आर्थिक दशा पर उच्चावच का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। धरातलीय उच्चावच के संदर्भ में मैदानी क्षेत्रों में जनसंख्या अधिक निवास करती है तथा पर्वतीय एवं पठारी भागों में जनसंख्या कम निवास करती है। समतल होने के कारण मैदानों में कृषि के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध होती है और साथ ही साथ वहाँ यातायात, सिंचाई, व्यापार आदि की सुविधाएं भी अधिक सुलभ होती है। महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत सरायपाली विकासखंड के मध्य मैदानी भाग का समुद्र सतह से ऊंचाई 250 मीटर है तथा सर्वेक्षित क्षेत्र के उत्तरी भाग में अवस्थित कबरा पहाड़ का समुद्र सतह से ऊंचाई 580 मीटर है। सुर्वेक्षित क्षेत्र का ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर है।

अपवाह तंत्र

अपवाह तंत्र शब्द किसी क्षेत्र के नदी तंत्र की व्याख्या करता है जिसमें अलग-अलग दिशाओं से छोटी-छोटी धाराएं आकार एक मुख्य धारा का निर्माण कर अपने ढाल के अनुरूप प्रवाहित होती है। किसी भी क्षेत्र के अपवाह प्रणाली के निर्धारण में वहाँ की स्थलाकृतिक बनावट, भूवैज्ञानिक संरचना, भूमिगत ढाल, जलवायिक लक्षण तथा उपलब्ध जल की मात्रा का महत्वपूर्ण योगदान है।

महानदी पाार क्षेत्र के अंतर्गत सरायपाली विकासखंड के उत्तर पूर्व में लातनदी प्रवाहित होती है तथा इसके मध्य में कुल्टी नाला का विस्तार है एवं इस क्षेत्र के दक्षिणी क्षेत्र में ओंगनदी प्रवाहित होती है इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखित सभी नदियां मुख्यतः महानदी अपवाह तंत्र का हिस्सा है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियां प्रायः ग्रीष्म काल में सूख जाते हैं।

जलवायु

किसी भी क्षेत्र की दीर्घकालिक वायुमंडलीय दशाओं को जलवायु कहते हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य, निवास तथा क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारकों में जलवायु का महत्व सर्वोपरि है। तापमान, आर्द्रता एवं वर्षा, प्रचलित पवने जलवायु का प्रमुख घटक है जो मानवीय क्रियाशीलता को नियंत्रित करते हैं। जलवायु भौतिक पर्यावरण का सर्वाधिक प्रभावकारी तथा महत्वपूर्ण अवयव है (पापाडिकंस, 1975)।

तापमान

तापमान, जलवायु का सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो धरातल और वायुमंडलीय क्रियाओं को प्रभावित करता है। महानदी पार क्षेत्र ऊष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु प्रदेश में स्थित है, जिसके कारण वर्ष भर उच्च तापमान रहता है। महानदी पार क्षेत्र में औसत तापमान 33°9 से. ग्रे. है। महानदी पार क्षेत्र में तापमान की सर्वाधिक मासिक विचलन मार्च के महीने में प्रदर्शित हुआ है जबकि न्यूनतम विचलन अक्टूबर माह में प्रदर्शित हुआ है। इस क्षेत्र में अक्टूबर में तापमान घटने लगता है, इस समय दिन की अपेक्षा रात का तापमान कम हो जाता जबकि नवंबर माह में दिन और रात दोनों का तापमान कम रहता है, वही इस क्षेत्र में दिसंबर-जनवरी में न्यूनतम (29) तापमान दर्ज होता है एवं मई महीने में अधिकतम तापमान (41) अंकित किया गया (सारणी क्र. 1.2)।

मई के महीने में दिन तो गर्म होता है साथ ही साथ रातें भी गर्म हो जाती है। दिन में गर्म व धूल भरी अंधियाँ चलने लगता है जिसे लू कहते हैं तथा स्थानीय भाषा में इसे झांझ या झोला कहते हैं।

सारणी क्र. 1.2

महानदी पार क्षेत्र (सरायपाली विकासखंड) : औसत मासिक तापमान एवं वर्षा

क्र	माह	अधिकतम तापमान (से)	न्यूनतम तापमान (से)	औसत तापमान (से)	वर्षा (मि. मी.)
1	जनवरी	29	16	22.5	10.8
2	फरवरी	33	19	26	8.2
3	मार्च	38	23	30.5	8.9
4	अप्रेल	42	28	35	5.4
5	मई	43	30	36.5	15.9
6	जून	38	29	33.5	77.6
7	जुलाई	32	26	29	364.4
8	अगस्त	31	25	28	384.5
9	सितंबर	31	24	27.5	249.8
10	अक्टूबर	31	21	26	87.6
11	नवंबर	30	18	24	13.3
12	दिसंबर	29	16	22.5	12.5
	औसत	30.9	22.9	28.4	103.20

स्रोत: जिला सांख्यिकी पुस्तिका : 2020-21

वर्षा

मानव जीवन में वर्षा का बहुत महत्व हैं क्योंकि पानी के बिना जीवन संभव नहीं है। वर्षा से फसलों के लिए पानी मिलता है तथा सूखे हुए कुएं, तालाबों तथा नदियों को फिर से भरने का कार्य किया जाता हैं। वर्षा के द्वारा ही किया जाता है, इसलिए कहा जाता है कि **'जल ही जीवन है।'**

महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत वर्षा का वितरण आसमान है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक वर्षा जुलाई, अगस्त, और सितंबर माह में क्रमशः 364, 384, और 249 मिलीमीटर होता है, जबकि सबसे कम वर्षा अप्रैल(5.4) में होता है (सारणी क्र. 1.2, आरेख क्र. 1.1)।

मिट्टी

मिट्टी प्रकृति का अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है तथा मानव जीवन का आधार स्तम्भ है, क्योंकि मानव की समस्त आर्थिक क्रियाकलाप जैसे- कृषि, उद्योग, पशुपालन आदि मिट्टी पर आधारित है। वनस्पति और कृषि की प्रकृति को निर्धारित करने वाले कारकों में मिट्टी का महत्व अधिक है (कुमार एवं शर्मा, 2010)।

महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत सराईपाली विकासखंड में मुख्य रूप से कन्हार मिट्टी, मटासी मिट्टी, डोरसा मिट्टी, भाठा मिट्टी आदि का विस्तार हैं। मृदा एवं जल संरक्षण हेतु जिले में कृषि विभाग द्वारा मनरेगा के माध्यम से

जल स्त्रोत का निर्माण एवं मट्टी कटाव रोकने के लिए जलग्रहण प्रबंधन मिशन के माध्यम से बोल्डर चेक, अर्दन चेक, परकोलेशन टैंक, नाला बांध, कंटूर पद्धति आदि कृषिगत क्रियाओं के माध्यम से मृदा जल संरक्षण का कार्य किया जाता हैं।

प्राकृतिक वनस्पति

प्राकृतिक वनस्पति प्रकृति द्वारा दिया गया निःशुल्क उपहार है। धरातल पर प्राकृतिक रूप से उगने वाली घास, पेड़-पौधे, कंटीली झाड़ियाँ तथा वन सभी प्राकृतिक वनस्पति के अन्तर्गत आते हैं। महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत सरायपाली विकासखंड में उष्ण कटिबंधीय आर्द पर्णपाती वनों का विस्तार हैं जहां मुख्य रूप से साल, सागौन, महुआ, शीसम, चार-तेंदु, एवं अन्य औषधियों से युक्त वनस्पतियां पायी जाती हैं। महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत सरायपाली विकासखंड के वन क्षेत्र रायपुर वन परिमण्डल के अन्तर्गत आता है।

निष्कर्ष

महानदी पार क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि का प्रभाव जहां उनके सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर दिखाई देता है, वहीं आर्थिक क्रियाओं को भी प्रभावित करता है। सरायपाली विकासखंड छत्तीसगढ़ महानदी बेसिन का महानदी पार क्षेत्र के अंतर्गत फैला एक विशिष्ट भौगोलिक विशेषताओं वाला क्षेत्र है। इस विकासखंड के उत्तर मध्य भाग में मूंधा पहाड़ तथा दक्षिण-पूर्व क्षेत्र में शिशुपाल पर्वत का विस्तार है, जो कि इस क्षेत्र को एक विशिष्ट जलवायु प्रदान करता है। इस क्षेत्र की भौगोलिक स्वरूप में भिन्नता देखने को मिलता है, जहां एक और इसके दक्षिण-पूर्व में शिशुपाल पर्वत का विस्तार है तो वही इसके उत्तर-पूर्व क्षेत्र घने वनों से आच्छादित है एवं विभिन्न खनिज संसाधनों की प्रचुर भंडार इन्हें खनिज संपन्नता भी प्रदान करती है। क्षेत्र के दक्षिण-मध्य भाग में समतल मैदान एवं कन्हार मिट्टी की उपलब्धता ने कृषि के विकास के लिए पथप्रदर्शक का कार्य किया है जिससे क्षेत्र धान के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के फासले के उत्पादन में विशिष्ट स्थान रखता है।

संदर्भ :

Gupta, R.P. (1982). *Popuation Geography of Rajasthan*, Ph.D. Thesis (Unpublished), B.H.U., Varanasi

Singh, O.P. (1973). *Population Geography of Uttar Pradesh*, Ph.D. Thesis (Unpublished) B.H.U., pp.16.

Dasman, R.F. (1972). *Man and the Biosphere Today*, Sterling Publishers Pvt. Ltd. Unesco.

Shryock, H.S. (edal) (1976). *The Method and Materials of Demography*, Academic Press Newyork, pp. 105.

Richards, I. (1978). *Population and Settlement in Meerut District*, Ph.D. Thesis (Unpublished). Gorakpur University, Gorakpur, p. 93.

Chandna, R.C. and Sidhu, M.S. (1980) *Introduction to Population Geography*, Kalyani Publisheres, New Delhi, p.19.

Taglor, G.F. (1956). Elements Metrology in D.S. lal (ed*) Climatology*, Sharda Pustak Bhawan Allahabad.

Trewartha G.T. (1953). A Case for Population Geography, *Annals of the Association of American Geographers*, Vol.43.

Demko, G.J. (1970). *Population Geography: S Reader*, Mc Graw Hills, New York.

Gosal, G.S.D. & Krishan, G (1965). Occupational Structure of Panjab Rural Population*, Indian Geographical Journal Madras*, Vol.xi, p. 11.

Papadakis, J. (1975). *Climats of the World and their Potentialities p.3 in D.S. Lal (ed); Climatology*, Sharda Pustak Allahabad.

Trewartha G.T. (1954). An Introduction to Climate, p.94 in D.S. Lal (ed) *Climatology*, Sharda Pustak Bhawan Allahabad.

Sharma, Sarla and M.P. Gupta (1994). "In-migration in Madhya Pradesh". *Transetion-IIG*,Vol.16, No.2, 147-154.

Ghosh, P.P. and A.N. Sharma (1995). "Seasonal Migration in the Rural Labour in Bihar", *Lather and Development,* Vol.1, No.1, pp, 118-135.

शर्मा, सरला (1993). ''मध्यप्रदेश में अंतर जिला उत्प्रवास की प्रत्याशा'', उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, भाग-29, अंक-1. एवं 2, पृ.75-85.

विजया, लक्ष्मी (2008). महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, योजना, वर्ष 53, अंक 10,पृ. 40-43, अक्टूबर, 2008.

कुमार, प्रमिला एवं शर्मा, श्री कमल (2010). मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 31.

अग्रवाल, मीरा एवं रायृ एच. के. (2007). जनपद बाराबंकी में जनसंख्या वृद्धि प्रारूप, उत्तर प्रदेश प्रारूप, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 37,संख्या 3, पृ. 81-88.

हिंदी का वैश्विक सन्दर्भ

डॉ. सत्य प्रकाश पाल*
satya10bhu@gmail.com

सारांश

यह शोध पत्र हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति, उसके वैश्विक विस्तार और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व पर केंद्रित है। इससे स्पष्ट होता हैं कि हिंदी आज केवल भारत की भाषा नहीं रही, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर संवाद और पहचान का माध्यम बन रही है। सूचना-प्रौद्योगिकी, सोशल मीडिया और संचार क्रांति ने हिंदी को एक नई गति प्रदान की है, जिसके परिणामस्वरूप यह राजनीति, साहित्य, व्यापार और शिक्षा सहित अनेक क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा रही है।

शोध-पत्र में हिंदी की स्थिति पर ऐतिहासिक दृष्टि भी डाली गई है—संविधान की धारा 343 और 351 में हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने के प्रयासों, 1950–1965 तक हुए हिंदी-प्रचार-प्रसार के प्रयासों और अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण उत्पन्न चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। इस शोध पत्र में बताया गया है कि हिंदी को लेकर केवल विलाप करने के बजाय हमें उसे सशक्त, वैज्ञानिक और अनुवाद-समर्थ बनाना होगा ताकि ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और तकनीकी सामग्री हिंदी में सुलभ हो सके।

शोध पत्र में पूर्वोत्तर राज्यों, प्रवासी भारतीय समुदाय, विज्ञापन जगत और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी के प्रभाव को रेखांकित करते हुए यह निष्कर्ष निकलता हैं कि हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार संभव है। युवाओं को अपनी भाषा के प्रति संवेदनशील बनने और इसे वैश्विक संवाद की प्रभावी भाषा बनाने की आवश्यकता है। शोध-पत्र अंत में यह स्पष्ट करता है कि हिंदी केवल राष्ट्रभाषा नहीं बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की धुरी है, जो भविष्य में भारत को एक मजबूत वैश्विक पहचान दिलाने में सहायक होगी।

मुख्य शब्द :

हिंदी, वैश्वीकरण, राजभाषा, सांस्कृतिक अस्मिता, प्रवासी साहित्य, संचार क्रांति, अनुवाद, संविधान, भाषिक राजनीति

हिन्दी भाषा आज के दौर में वैश्विक भाषा बनती जा रही है। वैश्विक बनती हिन्दी चुनावी भाषणों, खरीद-बिक्री सम्बन्धी सामान्य बातचीतों, नितांत निजी अथवा घरेलू राय-विचारों, सामान्य-विशेष बहस-मुबाहिसों आदि की पटरी पर सरपट दौड़ रही है। इक्कीसवीं सदी का भारत आज जिस जबान में जवान होता दिखाई दे रहा है वह हिन्दी ही है। आज देश के आम चुनावों में भी हिन्दी एक ऐसी मारक भाषा यानी 'मीडियम ऑफ स्पीच' हिन्दी की जगह अंग्रेजी नहीं हो सकती है। हिन्दी भाषा को जानने, देखने समझने की जो नयी परिपाटी शुरू हुई है, उसका एक बड़ा उपभोक्ता-वर्ग हिन्दी-जनसमाज है। संचार क्रांति और सूचना तंत्र वाली इस उत्तर शती में भारतीय भाषा का वैश्विक वितान 'हिन्दी समय' ही है। और आज यह राष्ट्रीय दबाव ही नहीं अंतरराष्ट्रीय दबाव के कारण हिन्दी बौद्धिकता अंग्रेजी 'इंटलेक्चुअल' को सीधे टक्कर दे रही है। भाषाविद् महावीर सरन जैन का "हिन्दी भाषा : वैश्विक व्यवहार एवं अन्तरराष्ट्रीय भूमिका" शीर्षक से लिया आलेख देखने योग्य है। उनका यह लेख केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से निकलने वाली भाषा पत्रिका के सद्य: प्रकाशित

* **सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—221005**

अंक में शामिल है। इस लेख में उन्होंने कहा है कि हिन्दी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य कितना समुन्नत नवाचारी और विचारन्वेषी है। साहित्यकार रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में, "एक तरफ लोग तकनीकी विकास की अंधी दौड़ में पुरानी भाषाओं को भूलते जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ एक ऐसा वर्ग पनप रहा है जो किसी भी कीमत पर अपनी लुप्त होती भाषाओं को बचाना चाहता है। हिब्रू तो संस्कृत से भी ज़्यादा समाप्तप्राय भाषा है, पर लोग उसे बचाने का प्रयास कर रहे हैं। इंग्लैण्ड में 'व्हेल्स' भाषा को बचाने के लिए कितने ही लोगों ने अपना जीवन दाँव पर लगा दिया है। हिन्दी हमारी आमदनी की भी भाषा है, हिन्दी आमजन की भी भाषा है, हाल के दिनों में हिन्दी एक वैश्विक धरातल पर अपना पैर पसार रही है।

पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में भी हिन्दी का क्षेत्र-विस्तार पूर्ण रूपेण होता जा रहा है। मैं अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी की स्थिति को जब देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि हिन्दी भाषी राज्य भी इस राज्य के आगे नहीं ठहरते अर्थात यहाँ की हिन्दी भाषा आमजन की बोलचाल की भाषा है क्योंकि अलग-अलग ट्राइब के लोगों के आचार-व्यवहार की भाषा है। यहाँ हिन्दी को लेकर बहुत ही सुखद स्थिति है। मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्पीलबर्गर से सहमत होना सही प्रतीत होता है- "जैसे-जैसे हमारा माहौल प्रतिस्पर्धी होता जा रहा है, काल्पनिक शत्रुओं की एक फौज तैयार होती जा रही है, स्पर्धी माहौल में हम खुद को भय और असुरक्षा में घिरा पाते हैं? इसलिए हिन्दी भाषा को स्थानिक स्तर पर इस भय और असुरक्षा के माहौल से बाहर निकालना होगा। संभाव्य चेतना के निर्माण हेतु भी इस दिशा में अथक एवं सार्थक चिन्तन-मनन बेहद ज़रूरी है। इसके लिए संकल्पबद्ध होना पड़ेगा और दृढ़ निश्चयी भी। भाषा का रोना रोने वालों से यह आग्रह करना चाहूँगा कि अपनी मातृभाषा पर रोने की जगह उसे मजबूत और संरक्षित करने की जरूरत है। बहुत लोग हिन्दी को इस नजरिए से देखते हैं कि वे हिन्दी को जानते ही नहीं। मैंने भी इसे झेला है जब लोग पूछते थे कि शोध कार्य का विषय क्या है तब हिन्दी का नाम सुन करके लोगों की भाव भंगिमा बदल जाती थी कि जैसे हिन्दी का नाम सुन लेने से कोई दर्दनाक हादसा हो गया है। इस भूमंडलीकरण के समय में जब हम अपने मानकों से कटते जा रहे हैं तब हिन्दी भाषा अपने नये कलेवर में उपस्थित होकर यूनीकोड संस्करण के अन्तर्गत विदेशों में अपना ग्लोबल रूप फैला रही है।

मारीशस जैसे देशों में हिन्दी की गहरी पैठ है। प्रवासी साहित्यकारों ने भी हिन्दी को लेकर जो हृदयस्पर्शिता दिखाई है वह अनुकरणीय है और आज प्रवासी साहित्य हिन्दी भाषा के माध्यम से देश और देशवासियों को संदेश देते हैं वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी होता है। वे भाषा को लेकर काफी सजग और सहज भी हैं। बदलते दौर के बदलते परिवेश में हिन्दी विज्ञापनों की किस कदर भूमिका है यह अलग से कहने की बात नहीं है। अंग्रेजी विज्ञापनों का संसार सीमित है लेकिन हिन्दी के विज्ञापनों का प्रसार-प्रचार विदेशी सुपरस्टार से लेकर क्रिकेटर तक करते नज़र आ जायेंगे। हिन्दी वह भाषा है जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास और फिल्मी गाने गाए जाते हैं, हिन्दी दिनों-दिन बन-सँवर और निखर रही है। एक बड़ी आबादी निधड़क अपने जीवन के रोजमर्रा के कार्यों में प्रयोग करती है और उसे मालूम है कि रेल को सवारी गाड़ी कहते हैं और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यूजीसी भी कहते हैं, उसे दर्पण-शीशा और मिरर भी मालूम है। जीवन के विभिन्न रूपों को हिन्दी समाहित किये हुए है। यह आमजन की भाषा भी है तो भविष्यवेत्ता भी है। आज के इस ग्लोबल दौर में हिन्दी भाषा को नए नजरिये के साथ देख और समझ रहे हैं। वह हिन्दी अब हिन्दी ही नहीं रह गयी है वह अब सबके माथे की बिंदी के रूप में सुशोभित होती नजर आ रही है।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है। भारतवर्ष स्वाधीन होने के बाद भारत के लिए लिखित रूप से संविधान लिखा गया और उस संविधान की 343 धारा में यह घोषित किया गया कि देवनागरी लिपि के लिए

हिन्दी राजकीय भाषा होगी। उसके बाद संविधान की धारा-351 में यह घोषित किया गया कि 'संघ सरकार का यह कर्तव्य होगा कि संघ सरकार हिन्दी के प्रचार के लिए प्रयास करे और हिन्दी के विकास के लिए भारतीय साहित्य-संस्कृति के सभी तरफ ध्यान दे।' संविधान की धारा-343 में यह भी घोषित किया गया था कि हिन्दी भाषा को राजकीय भाषा के रूप में स्वीकार करने के दिन से उसी दिन के अगले 15 वर्ष तक अंग्रेजी का स्थान राजभाषा के रूप में रहेगा, क्योंकि उस समय भारत में हिन्दी भाषा का उतना विकास नहीं हुआ था कि हिन्दी भाषा को राजकाज की भाषा के रूप में स्वीकार किया जाए। उस समय हिन्दी का महत्त्व उतना नहीं था जितना कि लोगों के बीच अंग्रेजी भाषा का था। इसके बाद सनु 1950 से लेकर 1965 तक भारत सरकार ने हिन्दी भाषा का विकास करने के लिए खूब प्रयत्न किया लेकिन परिणाम यह हुआ कि हिन्दी अंग्रेजी भाषा की दास ही बनती चली गयी और हिन्दी का महत्त्व घटता चला गया।

आज हमारे समाज में हिन्दी का महत्त्व उतना नहीं है जितना कि अंग्रेजी भाषा का है। आज समाज में उसी का महत्त्व है जो अंग्रेजी जानता और समझता है। समाज के अशिक्षित लोग भी अंग्रेजी को समझते हैं। आजादी के 70 वर्ष बाद भी भारत आज तक उस अंग्रेजी का गुलाम है। हमारे समाज में हिन्दी का महत्व अतुलनीय है, क्योंकि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। हम अपनी संस्कृति को भूल कर दूसरों की संस्कृति को अपना रहे हैं। अंग्रेजी के एक लेखक ने सही ही कहा था कि मैंने भारत में शिक्षा का ऐसा प्रचार किया है कि आने वाले भारतीयों का चमड़ा ही सिर्फ काला रहेगा और बाकी सब अंग्रेजी। इसलिए हम कहते हैं कि हम हैं भारतीय लेकिन हमारा दिल अंग्रेजी। आज भारत में कुल 45 करोड़ भारतीय हिन्दी जानते और समझते हैं लेकिन फिर भी हम पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति को अपना रहे हैं। आज हमारा समाज पूर्ण रूप से अंग्रेजी संस्कृति में डूबा हुआ है।

यह समय अपनी हिन्दी भाषा को लेकर रुदाली-गान करने का नहीं है। अंग्रेजी की आलोचना करने की जगह आज आवश्यकता अन्तरभाषीय तथा अन्तरानुशानिक हिन्दी अनुवाद की दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की है। साहित्य, कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी इत्यादि से सम्बन्धित ज्ञानानुशासनों को हिन्दी में लेकर आना हिन्दी भाषा के वैश्विक महत्त्व एवं पहचान को केन्द्रीयता प्रदान करता है। जनपक्षधरता की दृष्टि से अंग्रेजी ही नहीं, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी राष्ट्रीय भाषाओं का अनुवाद सम्बन्धी कार्य महत्त्वपूर्ण है। विशेषतया विभिन्न देशज भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-सामग्रियों का हिन्दी में संग्रहण- संकलन अत्यावश्यक है। यह कार्य स्वाधीनतापूर्वक बड़े जतन से किया गया। यह और बात है, आजादी से पहले जिस हिन्दुस्तानी ज़ुबान ने देश की गरिमा और उसका गौरवगान कायम रखा था, स्वाधीन भारत में उसे वह सर्वोचित स्थान नहीं मिला।

बहुभाषिक तथा बहुसांस्कृतिक भारतीय समाज में हिन्दी के महत्त्व को इरादतन कम कर दर्शाना अंग्रेजी पठित भारतीय नेताओं की सोची-समझी चाल थी। बाद के दिनों में हिन्दी भाषा को लेकर जो विवाद-विरोध शुरू हुए उसे भाषिक राजनीति कहा जाना उचित है। भाषा को लेकर वितंडावाद खड़े करने वाले अधिसंख्य नेताओं को अपनी-अपनी मातृभाषाओं से लगावृत्ति न होकर उनमें राजनीतिक हित-लाभ साधने की छटपटाहट और महत्त्वाकांक्षा अधिक थी। हाल के दिनों तक संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी भाषा को शामिल किए जाने को लेकर चर्चे खूब हुए, लेकिन हिन्दी की दशा और दिशा में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुआ। ध्यातव्य है कि हम आज को लेकर अतीत के कालक्रमों पर अपना मनगढ़ंत आरोप मढ़ते हैं, जबकि अंग्रेजी का दबदबा अंग्रेजी राज में भी वैसी सम्मानित स्थिति में कभी नहीं रहा जिस प्रभुतान स्थिति में आज है। दरअसल, "जब अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता भारत के चिन्तनशील लोगों के बीच में आई, उन्होंने बजाए इसके

कि इसके साथ बह जाएं, अपने अतीत की ओर देखना आरम्भ किया। इससे एक नए जागरण का युग प्रारम्भ हुआ।" स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में उपलब्ध उन सभी माध्यमों को आजमाया गया जिसमें भारतीयता की जान बसती हो, राष्ट्रीयता की चेतना अनुस्यूत हो। समाचार पत्र-पत्रिकाओं से कहीं अधिक बेजोड़ करतब दिखाने का काम 'आकाशवाणी' और 'दूरदर्शन' ने किया। विशेषतया "इसके लिए आकाशवाणी का माध्यम सबल और प्रबल माध्यम है, क्योंकि अनेक बोलियों में, अनेक भाषाओं में प्रसारण इस संस्थान के द्वारा होता है लेकिन अभिव्यक्ति इतनी भाषाओं में, इतनी बोलियों में, मुद्रण के माध्यम से भी नहीं होती जितनी कि इसके माध्यम से होती है और इसमें अपनी अभिव्यक्ति की विविध शैलियां हैं जैसे कि जो आकाशवाणी में हमारे किसानों के लिए कार्यक्रम होते हैं, हमारे श्रमिकों के लिए कार्यक्रम होते हैं या अन्य विशेष वर्गों के लिए जो कार्यक्रम होते हैं उनमें ऐसी अभिव्यक्ति-शैली अपनाई जाती है जो उन तक बात पहुँचा सके।"

हम किसी नदी के द्वीप की तरह से अलग-अलग न हो जाएं बल्कि हमको जन-सामान्य सापेक्ष होना चाहिए और जन-सामान्य सापेक्ष होने के लिए अनेक रचनात्मक कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। यह सच्चाई है कि, "हमारे बहुत से उच्च श्रेणी के बड़े-बड़े विचारक, चरित्रवान नेता कई एक ऐसे थे कि जो अंग्रेजी शासन, अंग्रेजी संस्कृति और अंग्रेजी भाषा के प्रबल समर्थक थे। भाषा के माध्यम से मनुष्य प्रकृति के विभिन्न रूपों, प्रकृति की विभिन्न गतियों, प्रकृति की विभिन्न मुद्राओं का सफल अंकन करता है। इस अंकन हेतु लिपि एक ज़रूरी साधन है। दुनिया की तरह लिपि भी अनेकानेक हैं। इसीलिए विद्वानों का कहना है कि लिपि की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति से बहुत बाद में हुई। लिपि मानव समुदाय का महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। लिपि की उत्पत्ति से पूर्व भवाभिव्यक्ति का दायरा बोलने और सुनने तक सीमित था। मनुष्य की उत्कट अभिलाषा रही होगी..... तभी तो उसने सोचा कि उसके ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी भाव-विचार दूर-दूर तक पहुँचे और इन्हें भविष्य के लिए संचित किया जा सके, उनका संरक्षण किया जा सके। इस आवश्यकता की पूर्ति करना उनका लक्ष्य बन गया और आगे चलकर यही मनुष्य के लिपि के आविष्कार की प्रेरणा बनी।

हिन्दी भाषा जिसे नवजागरणकाल में बख़ूबी गढ़ा गया; में प्रतिरोध की चेतना और आत्मबल की शक्ति प्रचुर मात्रा में सन्निहित थी। यह शक्ति ओजमान और तेजमान थी, इसलिए भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दी पत्रकारिता के अवदान एवं योगदान को लेकर बहुत कुछ कहने-सुनने को शेष है। इक्कीसवीं सदी में पैदा और विकसित हुई पीढ़ी को ध्यान में रखकर कहें, तो हमें अपनी भाषा-संस्कृति और उसमें घुली-मिली राजनीतिक चेतना को लेकर संवेदनशील होने बनने की जरूरत सबसे अधिक है। युवाओं पर अतिरिक्त बल इस कारणवश कि "जिस दुनिया में हम जी रहे है, वह बुद्धिजीवी पैगम्बरों की दुनिया है, स्वार्थ में डूबे हुए व्यक्तियों की दुनिया है। वह ऐसी दुनिया है, जिसमें औद्योगिक और पूँजीवाद से निकली एक भयानक पद्धति राज कर रही है। जिसमें तकनीकी सफलताओं और बाहरी जीतों की धूम है, जिसमें शारीरिक सुविधाओं और अवास्तविक विलासिता सामग्री की बाढ़ है, जहाँ सार्वजनिक जीवन में भी अनियंत्रित लिप्सा का अनन्त साम्राज्य है। जहाँ पाशविकता और रक्तपात का सहारा लेकर तानाशाही फैल रही है, जहाँ वास्तविकता का आदर एवं धर्म तथा आत्मा की उपेक्षा सबसे बड़ा आधार है।" यद्यपि सायासतन और इरादतन भाषा के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को पीछे छोड़ दिया गया है। अतएव, अधिसंख्य भारतीय भाषाओं के समक्ष अपने को बचाए रखने की जद्दोजहद जबर्दस्त है। हमने निज भाषा से सृजित माध्यम संस्कृति जिसमें एक दूसरे से जुड़ने या जुड़े रहने की अभ्यर्थना होती है, का परित्याग कर दिया है। अंग्रेजी की आरोपित माध्यम-संस्कृति ने भारतीय भाषा के सत्यानाश का महानुष्ठान जारी रक्खा है। लेकिन सच है, कोई भी अनुष्ठान दीर्घजीवी नहीं होता है।

साठोत्तरी दशक के कथाकारों के साहित्य में स्त्री चिंतन

प्रतिमा*

pratimasandeep48@gmail.com

सारांश :

साठोत्तरी दशक के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री चिंतन एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया। इस दौर में मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा जैसी लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के यथार्थ, संघर्ष, कुंठा और विद्रोह को अपनी कहानियों के केंद्र में रखा। इन कथाकारों ने नारी जीवन की विडंबनाओं, विसंगतियों, यौन स्वतंत्रता, पारिवारिक विघटन और श्रम की अवहेलना जैसे मुद्दों को कथा-साहित्य में स्थान देकर स्त्री की पहचान और अस्तित्व के प्रश्नों को गम्भीरता से उठाया। कृष्णा सोबती की मित्रों मरजानी जैसी कहानियों में स्त्री की यौन इच्छाओं को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया, वहीं मन्नू भण्डारी की कहानियों में मध्यमवर्गीय नारी की अस्मिता और अकेलेपन का चित्रण मिलता है। चित्रा मुद्गल, गीताश्री और मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी समकालीन लेखिकाओं ने पूंजीवादी समाज की विसंगतियों, स्त्री-शोषण और स्त्री-जीवन की नयी चुनौतियों को रेखांकित किया। पुरुष कथाकारों में भी दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन और काशीनाथ सिंह जैसे साहित्यकारों ने स्त्री विमर्श को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस प्रकार, साठोत्तरी दशक की कहानियाँ न केवल स्त्री जीवन के संघर्षों का दस्तावेज़ हैं, बल्कि समाज में स्त्री की बदलती भूमिका और चेतना का सशक्त प्रमाण भी प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द:

साठोत्तरी कहानी, स्त्री चिंतन, नारी विमर्श, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, स्त्री स्वतंत्रता, पारिवारिक विघटन, लैंगिक समानता, श्रम की भागीदारी।

साठोत्तरी दशक के कथाकारों में महिला कहानी लेखिकाओं का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महिला लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, अनामिका, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, चित्रामुदगल आदि अनेक लेखिकाओं हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री चितंन को बहुत ही प्रमुखता से उठाया है। प्राचीन काल की स्त्रियाँ किस तरह अपने पिता, पति पुत्र इन तीन (**P**) वर्ण से ऊपर नहीं उठी। हमेशा उन्हीं के अधीन रही, पहले पिता के घर पर, पति के घर पर फिर पुत्र के साथ रहते हुए उनके साथ वही व्यवहार हुआ। स्वतंत्र रूप से निर्णय किसी भी चीज के लिए नहीं ले पा रही थी। पिता के यहां लज्जा, दया, ममता चारित्रिक विशेषताओं को अन्दर पूर्ण रूप से भरा जाना था और फिर चार दीवारों में घर के सारे काम को करते हुए पति और बच्चों की देखभाल में पूरा जीवन निकाल देना और बदले में परिवार के लोगो द्वारा ये सुनना कि घर पर ही तो रहती हो दिन भर क्या करती हो? लेकिन अगर दिन भर की मेहनत का हिसाब लगाया जाय तो पुरुष वर्ग से ज्यादा घंटे महिला घर पर काम कर रही है। अगर महिला अपना हक मांगने पर आ जाये तो पुरुषों के लिए हिसाब दे पाना मुश्किल हो जायेगा।

साठोत्तरी दशक के कहानी लेखकों, लेखिकाओं ने अपने साहित्य में इसी तरह की महिलाओं की कई समस्याओं को उजागर किया है। समाज का ऐसा कोई विषय महिलाओं से जुड़ा नहीं है जो इन कहानी

* **शोध छात्रा, हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

लेखिकाओं न उठाया हो। इन लेखिकाओं ने अपनी लेखन शैली से ज्वलंत मुद्दों को भी सरल, सहज भाषा में उजागर किया है।

समकालीन महिला कथा साहित्य का फलक अत्यंत विस्तृत एवं बहुविध है। 1960के बाद हिन्दी साहित्य कहानी के विकास क्रम में महिला कथाकारों का योगदान महत्वपूर्ण है। इन कहानीकारों ने समाज की विभिन्न समस्याओं को एवं यथार्थ को चित्रित किया है। कहानी के केंद्र में पारिवारिक एवं मानवीय सम्बन्धों में आने वाले परिवर्तन, महानगर, कस्बों, गांव, मध्यम वर्ग की आशाएं और आकांक्षाएं, आज के आधुनिक जीवन के अकेलेपन की चुनौतियां, नारी संघर्ष, पारिवारिक विघटन, नारी जीवन की यथार्थता मुख्य है।

नारी जीवन की विडंबना, विसंगति, कुण्ठा, अजनबीपन, निराशा, ऊब आदि इन कथाकारों के मुख्य विषय है। हिन्दी साहित्य में अनेक महिला कथाकारों ने नारी लेखन को विकसित किया है। सन् साठ से पूर्व देखा जाये तो जो महिला कथाकार कहानी के क्षेत्र में आयी वह परम्परा से हटकर अपनी विषमता को लेकर उभरी हैं।[1]

मन्नू भण्डारी 'नयी कहानी' की कथाकार है। मन्नू भण्डारी के कहानी सृजन में आज के मनुष्य के पारिवारिक, पारस्परिक संबंधों की वास्तविकता को अत्यन्त सूक्ष्मता और कलात्मकता के साथ उजागर किया गया है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह 'एक प्लेट सैलाब', 'मैं घर गयी'- 1987 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'मेरी प्रिय कहानिया' -1976 'यही सच है' -1972', 'त्रिशंकु'-1981 है। इन कहानियों के कथ्य में वैविध्य है साथ ही वें अपनी कहानी में नारी को हर स्थिति में दयनीय बताती हैं, चाहे विवाहित हो या अविवाहित, पत्नी हो या प्रेयसी इसका जीवंत उदाहरण है- 'अकेली' कहानी की सोमाबुआ। यह 'अकेली' कहानी मध्यवर्गीय भारतीय नारी की ऐसी कहानी है जो बदलते हुए जीवन मूल्यों के बीच अपनी पहचान खोती जा रही है। सोमा बुआ के जीवन का अकेलापन ही इस कहानी का केंद्रीय भाव है।

हम उस समाज का हिस्सा है, जहां नारी लक्ष्मी है, दुर्गा है, सरस्वती है,जिसकी पूजा हम हमेशा से करते आ रहे हैं परन्तु असलियत में हमने नारी को सिर्फ बेचारी के ही रूप में देखा है। साठोत्तरी दशक में जब हमारा देश पूर्ण रूप से आजाद हो चुका था, फिर भी हमारा समाज नारी के प्रति मानसिक रूप से गुलाम ही रहा। उसे सिर्फ भोग और काम-काज की वस्तु के ही रूप में देखा है। जब भी स्त्री को एकाध मौके मिले उसने अपने आपको साबित भी किया है जैसे पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, लता मंगेशकर और हेलन जैसी तमाम महिलाएँ अपने-अपने क्षेत्र में अग्रणी रही हैं परन्तु ज्यादातर क्षेत्र में महिलाओं को आगे बढ़ने से पुरुष प्रधान के ठेकेदारों ने रोक रखा था। उनकी स्वतंत्रता को आजादी के बाद भी छीन रखा था, जबकि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ ज्यादा-घण्टे काम करने का दम-खम रखती हैं।

हिन्दी कहानी की यात्रा में स्त्री विमर्श अलग-अलग दौर की महिला कथाकारों द्वारा अलग-अलग दृष्टियों से देखा, जाँचा-परखा गया है।

स्त्री विमर्श के अन्तर्गत स्त्री के पौराणिक दैवीय रूप को नकारकर उसे सहज मानवीय रूप में प्रतिष्ठित करने की मांग पुरुष सत्तात्मक समाज में तथाकथित दोगले बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष पुरजोर ढंग से की गई ताकि कुछ तो वो अपने परम्परागत, रूढ़िवादी, संकीर्ण सोच के दबे-छिपे जंग लगे आवरण से बाहर निकलकर उसके सहज मानवी स्वरूप को स्वीकार कर सकें। सदियों से सामाजिक मर्यादा के नाम पर बने कठोर नियमों धार्मिक छद्म के तले पिसती और सर्वाधिक कमजोर आर्थिक स्थिति की पीड़ा को झेलती स्त्री समाज में मात्र देवी

स्वरूपा बनी पिसती रही, पर कभी इन बेड़ियों को तोड़ने को उद्यत न हुई। क्योंकि समाज के विद्वतजनों ने मौन को विद्वानों का आभूषण बता उसे मूक और निहत्था कर दिया। स्त्री पर समय-समय पर लगायी गयीं इन आचार-संहिताओं का परिणाम यह हुआ की उसका मानवी रूप खोकर रह गया। वो समाज में उपस्थिति दर्ज करवाती रही तो मात्र देवी या दासी के रूप में ही। आधुनिक काल में शिक्षा नीतियों में परिवर्तन, समाज सुधारकों द्वारा किये गये सुधार कार्यों और स्वयं स्त्री के हौसलों ने उड़ान भरी और सदियों से शोषित, दमित नारी की जीने की आशाएं पल्लवित हुई। स्त्री समाज में पुरुष की प्रतिस्पर्धी बनकर नहीं बल्कि उसकी पूरक और सहचरी बनकर जीना चाहती है। मात्र जीना ही नहीं चाहती बल्कि सम्पूर्ण विश्व, राष्ट्र, समाज, परिवार की प्रत्येक इकाई के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, अध्यात्मिक आदि सभी क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास में अपनी सशक्त भूमिका का निर्वहन भी करना चाहती हैं। किन्तु स्त्री भक्ति आन्दोलन, स्त्री चेतना के फलस्वरूप नारी जीवन में एक नयी ऊर्जा दिखाई पड़ीं, इसका प्रभाव दुनिया भर की लेखिकाओं पर पड़ा।[2]

हिन्दी कहानी यात्रा के प्रारम्भिक दौर में ही महिला कथाकारों ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। जिसका सशक्त उदाहरण हैं (राजेंद्र बाला घोष)। इनकी कहानी 'दुलाईवाली' हिन्दी की प्रारम्भिक महत्वपूर्ण सशक्त कहानियों में गिनी जाती है। जब हम स्त्री विमर्श की जड़े तलाशने निकलते हैं तो इस विशाल वट वृक्ष की जड़े हमें 'दुलाईवाली' कहानी में ही मिलती है। बंग महिला ने दुलाई के माध्यम से स्त्री की दारुण कथा को कहा है जिसमें मुख्य स्वर स्त्री के अकेलेपन को मुखरित करना रहा है। जिसमें समाज की स्त्रियां उसके अकेलेपन को लेकर चिन्ता तो करती है पर साथ नहीं देती।

भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर साठोत्तरी दौर की महिला कथाकारों के बीच कुछ खाली कुछ दबी एक ऐसी पीढ़ी भी आई जिसने स्त्री जीवन के संघर्षों को तत्कालीन प्रसंगों की कहानियों के माध्यम से प्रकाश में लाने का प्रयास करते हुए आने वाली पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त किया।

स्त्री विमर्श से जुड़े मुद्दों को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप अपनी कहानियों के माध्यम से नींव रखकर साठोत्तरी महिला कथाकारों को भवन-निर्माण की पूरी सामग्री उपलब्ध करवाई। इस दौर की प्रमुख हस्ताक्षर है- बंगमहिला (राजेंद्रबाला घोष), ऊषादेवी, सुभद्रा कुमारी चौहान, हेमवती देवी, सुमित्रा सिन्हा, चन्द्रकिरणसोनरेक्सा शिवरानीदेवी आदि। इसकी कहानियों का मुख्य आधार स्त्री जीवन हैं। इनकी कहानियों में नारी पात्र शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाले हैं।[3]

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' के उपरान्त 'मित्रों मरजानी' और 'सूरजमुखी' अँधेरे के स्त्री विषयक चिन्ता व चिन्तन के केंद्र बिन्दु है। मित्रों मरजानी प्रख्यात लेखिका कृष्णा सोबती की है। उनका अनुभव संसार बहुत व्यापक है तथा इस संसार का अनुभव करने के लिए उनके पास नारी माध्यम है। स्वभावत: वंचना और पीड़ा के प्रति उनके कथा साहित्य में सहज झुकाव है। अपने साहसी विषय चुनाव और चरित्रों के लिए भी कृष्णा जी पहचानी जाती है। खासकर स्त्री चरित्रों के लिए और स्त्री जीवन की अछूत समस्याएँ उठाने के कारण। मित्रों मरजानी के रूप में अविस्मरणीय चरित्र उन्होंने हिन्दी को दिया, वह उनके सृजनात्मक साहस का प्रमाण है जो समूचे अनुभव और जीवन को सृजन की सामग्री बनाकर हर निषेध का इनकार करता है मित्रों का चरित्र लेखिका ने बहुत ही जटिल ताने बाने से बुना है। वह पारंपरिक मूल्यों को जीते हुए मध्यवर्गीय परिवार से एक युवती के विद्रोह की कथा है। मित्रों मरजानी की नायिका मित्रों का ब्याह होता है, और वह ससुराल आती है।

सास, जिठानी उसके तेवर से सहमकर भी उससे प्रेम करते हैं। उसके यौवन कामना को उसका पति कोई तरजीह नहीं देता है वह ससुराल में खुलेआम इसके खिलाफ बगावत पर उतर जाती है। इस बगावत में उसकी पीड़ा स्पष्ट है। मित्रों के इसी अधिकार पर केंद्रित कर लिखी गई कथावृत्ति है। मित्रों जब अपने पति से यौन सुख नहीं पाती है तो अपने सास से कहती है कि "अम्मा अपने बेटे को किसी नीम हकीम के यहां जाकर दिखा दो।" मित्रों का वक्तव्य स्त्री के उन अधिकारों की पैरवी करता है कि यौन संबंधों में संतुष्टि का हक उसे भी मिलना चाहिए।[4]

चर्चित लेखिका "तस्लीमा नसरीन" अपनी पुस्तक 'नष्टलड़कीनष्टगद्य' की भूमिका में लिखती है कि उन सभी प्रथाओं रीति-रिवाजों का खंडन करना चाहिए जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता। परम्परा के नाते समाज में छोटी बड़ी विशेषता या अन्याय का विरोध अनिवार्य है और इसके विरोध का दायित्व सबका है।

वृन्दाकारात लिखती है कि "नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसके आधार पर महिला मुक्ति का प्रयास किया जा रहा है। इसके अनेक रूप है अलग-अलग प्रवृत्तियां हैं जिन्हें समय-समय पर अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया जाता है एक लक्ष्य सब में समान हैं। महिला होने के नाते उसका जो शोषण किया जाता है उसका मूल खोजा जाए और जड़ से उखाड़ फेंका जाए।"[5]

महादेवी वर्मा ने 1936-37 में महिला विद्यापीठ में एक पत्र स्त्री-साहित्य पर रखा था। अमेरिकी, ब्रिटिश और अफ्रीकी स्त्री-साहित्य से भारतीय स्त्री-साहित्य और हिन्दी स्त्री- साहित्य कुछ भिन्न है। गाँधी के असहयोग आन्दोलन में लगभग पचीस हजार स्त्रियाँ जेल गयीं थी,सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय हुई थी। पितृसत्तात्म समाज कई देशों में है, पर भारत जैसी सामंतवादी वर्ण व्यवस्था किसी अन्य देश में नहीं है। इस कारण भारतीय स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न कही अधिक जटिल हैं। वह घर के भीतर और बाहर कैद थी वह सुलगती रही, पर कभी बुझी नहीं। स्त्री लेखन में क्रमशः संघर्ष आक्रोश और प्रतिरोध बढ़ता गया है।[6]

आधुनिक नारी की दशा एवं दिशा तथा उसकी नियति को केन्द्र में रखकर चित्रा मुदगल ने 'आँवा' उपन्यास में पूँजीवादी हथकंडों को भी बेनकाब किया है। पूँजी वादी मानसिकता को उखाड़ने के साथ ही वे आज ही आधुनिकताओ को भी बेनकाब करती हैं। जो पुरुष वर्चस्व का विरोध करते हुये परपुरुषों की अंकशायनी बनने में उत्सुक रहती है तथा क्रांतिकारिता समझती है इसका दारुण अवसान पाठक के मन में कई प्रश्नों को उकेरता है।[7]

गीताश्री समकालीन कहानी की सशक्त लेखिका है। वे कहानियाँ लिखती और गढ़ती ही नहीं, बल्कि सीधे जीवन में उठकर कहानियों को रचती है। वरिष्ठ कथाकार गीताश्री के कहानी - संग्रह "स्वप्न साजिश स्त्री" में विविध मानवीय संबंधों एवं साजिश की शिकार होती स्त्रियों के संघर्षों की दास्तान है। 'कहाँ तक भागोगी' कहानी में वे लिखती है "मैं उसे कहना चाहती थी कि औरतों का कोई धर्म, कोई मुल्क, कोई जाति कहाँ होती है। धर्म बदलने में लिंग परिवर्तन तो नहीं हो जाता न, रहोगी तो स्त्री ही। कहाँ तक भागोगी खुद से, अपने स्त्री होने से।" मैं उसकी किसी बात से सहमत नहीं थी, फिर भी उसमें कुछ ऐसा था जिसने मुझे जमा दिया था।

कविता नयी पीढ़ी की ऐसी रचनाकार है जो समसामयिक प्रसंगों को अपनी कहानियों की विषयवस्तु बनाती है। 'आईना हूँ मैं', 'भय' 'फुरसत के चार दिन', 'मेरी नाप के कपड़े' जैसी कहानियाँ उनकी सृजनात्मक

प्रतिभा की सूचना देती है। वे 'लिव-इन को एक थीम की तरह कहानी में व्यक्त करती है। कविता लिव-इन के खतरों, जोखिमों और दंगों को कथात्मकता प्रदान करने की भरपूर कोशिश करती है।

इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण कथाकारों में मनीषा कुलश्रेष्ठ का महत्वपूर्ण स्थान है। 'कठपुतलिया' कहानी से ही यह कथा जगत में अपना स्थान बनाती है। उनके अबतक के सात कहानी संग्रह में 'बौनी होती परछाई' 'कठपुतलियां, 'कुछ भी हो रूमानी नहीं' 'केयर ऑफ स्वात घाटी' 'गंधर्वगाथा' 'अनामा' और किरदार के माध्यम से कहानी संसार को अलंकृत किया है।[8]

आत्मकथा लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथा में अस्तित्व रक्षा एवम् मुक्ति के जद्दोजहद करती हुई एक विशेष रचनात्मक उर्जा के साथ दिखाई पड़ती है। 'अन्या से अनन्या' एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जो सामाजिक आर्थिक रूप से संपन्न है। उच्च जाति की है किंतु फिर भी वह हाशियेकरण का शिकार होती है। बचपन से वह अपनी माँ का वह ममत्व नहीं प्राप्त कर पाती जो अन्य भाई- बहन को मिलता है। वह प्रताड़ना भी सहती है, शायद इसके पीछे सॉवले और काले रंग की हीन समझ वाली रंग भेद प्रवृत्ति है, जिसमें कोई भी स्त्री काले या साँवले रंग के साथ सौन्दर्य का मानक नहीं बन सकती। रंगभेद की इसी दृष्टि के कारण आत्मकथा नायिका पूरे बचपन और उसके बाद भी अपने को हाशिए पर पाती है शायद इसलिए डॉ. श्राफ के द्वारा अपने सावले रंग के सौन्दर्य की प्रशंसा ने उसे श्राफ के प्रति घोर समर्पण के भाव से भर दिया है, जिसके कारण वह शेष जीवन में बार-बार अपमान के विष को भी उसी प्रारम्भिक सम्मोहन के कारण सहती है। इसी तरह मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' की नायिका मन्नू भण्डारी है। उनको भी स्त्री होने के नाते इन्हीं समस्याओं से दो-चार होना पड़ा उन्हीं के शब्दों में "मैं काली हूँ बचपन में दुबली और मरियल भी थी, गोरा रंग पिता जी की कमजोरी थी, सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी खूब गोरी और हस-मुख बहन शीला से हर बात में तुलना और फिर प्रशंसा ने ही हीन भावना की ग्रंथि पैदा कर दी। नाम सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद भी आजतक इससे उबर नहीं पायी।[9]

हिंदी कथा साहित्य के साठोत्तरी दौर के साहित्यकारों में दूधनाथ सिंह का प्रमुख स्थान है। साठ के दशक में कहानी कविता नाटक उपन्यास में जो मूलभूत एवं मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं उनमें ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, और रविन्द्रकालिया, जैसे साहित्यकार नई शैली में अपनी बात कह रहे थे उन्हीं में दूधनाथ सिंह भी थे जिन्हें साठोत्तरी दशक के इन्हीं चार मित्रों में गिना जाता है एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे दूधनाथ सिंह जी ने अपनी लेखनी में मध्यमवर्ग की पीड़ा दुख संत्रास उहापोह आदि को उतारने का सफलतम प्रयास किया है। दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श का पुट प्रमुखता से आया है समाज में स्त्री कैसे रह रही है उसका जीवन-यापन कैसा है उसके गुण-दोष क्या है तथा पुरुष प्रधान समाज स्त्री को किस नजर से देखता है इसकी सुंदर अभिव्यंजना दूधनाथ सिंह के साहित्य में दृष्टि गोचर होती है। 'माई का शोकगीत' में जहाँ दूधनाथ सिंह ने ग्रामीण पृष्ठभूमि पर स्त्री स्वतंत्रता को आधार बनाकर तीन स्त्री पात्रों- गंगामाई, कनिया और गायत्री जैसे पात्रों का सृजन किया है वहीं पर धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे नामक कहानी में स्त्रियों के साथ होने वाले अपराध और व्यभिचार को भी प्रमुखता से उठाया है।

ज्ञानरंजन के सम्बन्ध में साठोत्तरी कहानी आन्दोलनों में स्त्री चिंतन के अलावा समाज के अन्य मुख्य बिंदु को भी दर्शाया है। उन सभी बिन्दुओं में पुरुष वर्ग की भी बात की है। इन्होंने अपनी अनेक कहानियों में परिवार के टूटन को कथ्य बनाया है। ज्ञानरंजन की कहानियों में 'शेष होते हुए' 'संबंध', 'पिता', 'फेंस के इधर

और उधर' में टूटते हुए परिवारों को कहानी का अंश बनाया गया है। मूल्यों का टूटन और विघटन नई कहानी के प्रमुख गुणों में से है यही नहीं,नई कहानी समाज में नए मूल्यों की तलाश करती है। साठोत्तरी कहानी मूल्यों के अस्वीकार की कहानी है वह नए मूल्यों की तलाश की तरफ नहीं जाती है बल्कि वह टूट रहे मूल्यों को भी एक चिरपरिचित उदासीनता के साथ देखती है। ज्ञानरंजन की 'घंटा बहिर्गमन' 'संबंध' हास्य रस और 'छलांग' जैसी कहानियाँ मूल्यों के अस्वीकार की कहानियाँ है। आजादी के तुरंत बाद का सामाजिक परिवेश यदि नई कहानी की पार्श्वभूमि की रचना करता है तो साठोत्तरी कहानी में भी नेहरू युग का स्वप्नभंग,परिवेश की विसंगति, जिजीविषा, निराशा और कुंठा के चित्रण किए गए हैं। ज्ञानरंजन की 'यात्रा' और 'कलह' जैसी कहानियों में इसके गुण दिखाई देते हैं।[10]

साठोत्तरी दौर के कहानीकारों में काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री चिंतन बहुत ही उभर कर आया है। काशीनाथ सिंह द्वारा आत्मकथात्मक शैली में लिखित लघु उपन्यास 'महुआचरित'में अस्तित्वबोध के लिए संघर्ष करती नायिका महुआ की सघन व जटिल संवेदना को दर्शाया गया है। देशभक्ति से विवाह तक की यात्रा में महुआ के उत्पन्न जीवन की अपार अरण्य में भटकती इच्छाओं के आख्यान का प्रस्तुतीकरण उपन्यास में किया गया है। महुआचरित लघु उपन्यास होने के बावजूद अपने अंदर कई बड़े सामाजिक मुद्दों को समेटे हुए है। उपन्यास पुरुष की निम्न मानसिकता एवं नारी मुक्ति के यथार्थ को प्रस्तुत करता है।[11]

काशीनाथ सिंह ने महुआ चरित में लिखा है महुआ 19 साल की वो लड़की है जिसकी इच्छाएं, आकांक्षाएं बहुत हैं लेकिन वह सामाजिक एवं नैतिक बंधनों में जकड़ी हुई है। महुआ इन रूढ़ियों से मुक्त होना चाहती है। उसके पिता स्वतंत्रता सेनानी थे और देश की बहुत चिंता करते हैं। इसी से परेशान होकर बोलती है– "कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा है? तुम्हें तो यह तक नहीं पता है कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है उन्नीस या तीस तुम जिन सहेलियों के बारे में पूछते हो उनमें कितनी मां बन चुकी हैं और कितनी पेट से हैं? तुम यह भी जानते हो कि ना दहेज दे सकते हो,ना मैं वैसी शादी कर सकती हूं। फिर तुम खुलकर क्यों नहीं कहते की बेटी, तुम्हें जो करना है करो हम साथ हैं तुम्हारे।"[12]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी दौर के कहानीकारों में न केवल महिला लेखिकाओं ने बल्कि कुछ प्रमुख लेखकों ने भी स्त्री चिंतन को प्रमुखता से चित्रित किया है। 60 के दशक में महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। वैवाहिक जीवन की ऊब, संत्रास, कुंठा, यौन मुक्ति की छटपटाहट को महिला लेखिकाओं ने अपने लेखन का विषय बनाया है। महिलाओं के हक के लिए एक से एक विचारोत्तेजक कहानियों का सामाजिक परिदृश्य में चित्रित करना ही उन्हें सार्थक बनाता है। महिलाओं को किस तरह रंगभेद का सामना करना पड़ता है। खुद माता-पिता ही उन्हें भेदभाव की दृष्टि से देखते हैं। घर के कामों को कामों में न गिना जाना उनके लिए बहुत बड़ा अन्याय है। कई कहानियों में श्रम की भागीदारी को भी प्रस्तुत किया गया है। पुरुष वर्ग पत्नी के साथ प्रेमिका भी रखता था मगर स्त्री किसी पुरुष से बात भी कर ले तो पति की भौंहें तन जाती थी। स्थितियां अभी भी ज्यादा नहीं सुधरी है मगर कुछ चीजें ठीक हो गई हैं जैसे स्त्री पुरुष का साथ में नौकरी करना दोनों का बच्चों को संभालने यह आपसी सामंजस्य देखने को मिलता है। यानी श्रम की भागीदारी का महत्व काफी हद तक देखने को मिलता है।

वर्तमान समय में भी स्त्री चिंतन के लिए अभी भी आवाज उठाने की जरूरत है और यह कार्य साहित्य ही कर सकता है।

संदर्भ –

1. राव, किशोर सिंह, & सक्सेना, मीरा. (2013). *समकालीन महिला कहानियों में युगबोध*. जयपुर: रचना प्रकाशन.

2. अंजू. (2014). साठोत्तरी महिला कथाकारों की कहानियों में स्त्री विमर्श. *अपनी माटी*. **http://www.apnimaati.com/**

3. वर्मा, रेणु. *साहित्यिक निबंध*.

4. पांडेय, सर्वेश. स्त्री लेखन का स्त्रीवादी पाठ. *स्त्रीकाल*. द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन.

5. सिंह, कमलेश कुमार. समकालीन लेखन - स्त्री का समाजशास्त्र.

6. भूषण, रवि. *लेखन और चिंतन का स्त्री अध्याय*. राजकमल प्रकाशन.

7. स्त्री विमर्श विविध पहलू - डॉ सरोज सिंह, समकालीन स्त्री विषयक समाजशास्त्रीय आयाम - डॉ कल्पना वर्मा

8 सिंह, सरोज. (2021). *स्त्रीवादी चिंतन की विविध दशाएं*.

9. सिंह, प्रभाकर. *समकालीन स्त्री लेखन*.

10. पंत चतुर्वेदी, भागीरथी. (2016). ज्ञानरंजन कहानी की विशेषताएं. *अपनी माटी*. **http://www.apnimaati.com/**

11. सनोवर. महुआचरित का नारीत्व. *अपनी माटी*. **http://www.apnimaati.com/**

12. सिंह, काशीनाथ. (2005). *महुआ चरित*. राजकमल प्रकाशन. पृ. 14

स्वयं प्रकाश का रचनात्मक उपादान

गणेश कुमार साव*
gk8507441959@gmail.com

सारांश (Abstract)

स्वयं प्रकाश हिन्दी कथा-साहित्य के एक प्रमुख जनवादी कहानीकार रहे हैं, जिन्होंने साठोत्तरी पीढ़ी के साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई। उनकी रचनाओं में मध्यवर्गीय जीवन, सामाजिक विसंगतियाँ, रूढ़ियाँ, जातिवाद, सांप्रदायिकता और वैश्वीकरण से उपजे संकटों का यथार्थ चित्रण मिलता है। कविता से अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत करने के बाद उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, साक्षात्कार और बाल साहित्य जैसी विविध विधाओं में सृजन किया। उनकी प्रमुख कहानियों – पार्टीशन, अगले जनम, क्या तूने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है? आदि में मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक संघर्ष की गहरी समझ दिखाई देती है। उपन्यास जलते जहाज पर, बीच में विनय और ईंधन में समकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं और व्यक्ति की मानसिक, सामाजिक व राजनीतिक उलझनों को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्वयं प्रकाश का साहित्य जनवादी दृष्टि से प्रेरित है जो समाज को परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

स्वयं प्रकाश, साठोत्तरी कथा-पीढ़ी, जनवादी कहानी, सामाजिक यथार्थ, उपन्यास, कहानी-संग्रह, मध्यवर्गीय जीवन, सांप्रदायिकता, जातिवाद, भूमंडलीकरण।

सन् 1960 ई० के बाद कथाकारों की जो पीढी़ हिन्दी साहित्य में उभरकर आयी, उसे साठोत्तरी पीढ़ी कहा जाता है। इन कथाकारों में प्रमुख है- दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, ममता कालिया महेन्द्र भल्ला, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश, गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, श्रीकांत वर्मा, संजीव, प्रियंवद, प्रयाग शुक्ल इत्यादि। इन कथाकारों में स्वयं प्रकाश का महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वयं प्रकाश हिन्दी के समकालीन कथाकारों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी है। सठोत्तरी हिन्दी कथाकारों में इनकी प्रतिष्ठा जनवादी कहानीकार के रूप में रही है। ये अपनी पीढी़ के सर्वाधिक कुशल कहानीकार माने जाते हैं। अपने साहित्यिक शुरुआत इन्होंने कविता से की और मंचों पर काव्य पाठ भी किया बाद में गद्य लेखन की दुनिया में आये और सन् 1969 ई० में इनकी पहली कहानी 'टूटते हुए' 'समाज कल्याण' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। स्वयं प्रकाश ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इन्होंने हिन्दी साहित्य की कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, निबंध, साक्षात्कार इत्यादि विधाओं

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)**

में लिखा है। नाटक के क्षेत्र में भी इन्होंने महत्वपूर्ण लेखन किया है। लेकिन मूलतः ये कहानीकार के रूप में विख्यात है। इनकी अब तक प्रकाशित नाटकों में - फीनिक्स, चौबोले और सबका दुश्मन प्रमुख है।

कथाकार स्वयं प्रकाश का जन्म 20 जनवरी 1947 को एक मध्यवर्गीय परिवार में मध्य प्रदेश के इंदौर में नानीहाल में हुआ। इनके पिता अजमेर के रहने वाले थे। इनकी माता का नाम सरस्वती देवी तथा पिता का नाम नंदलाल था। 1962 ई॰ में इंटर की परीक्षा पास करने के बाद स्वयं प्रकाश 1966 ई॰ में मेकेनिकल इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की और 1967 ई॰ में भारतीय नौसेना में भर्ती हो गए। भगवान मिलना आसान है लेकिन नौकरी मिलना आसान नहीं, इस कहावत को झूठा साबित करते हुए उन्होंने कई क्षेत्रों में सरकारी तथा गैर सरकारी नौकरी किया और उन्हें छोड़ा। नौकरी के दौरान ही 1974 ई॰ में स्वयं प्रकाश ने देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर से बी॰ ए॰ की परीक्षा पास की। पुनः 1980 ई॰ में इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम॰ ए॰ की परीक्षा पास की। 1982 ई॰ में इन्हें सुखाड़िया विश्वविद्यालय से पीएच॰ डी॰ की उपाधि मिली।

स्वयं प्रकाश स्थिर रहने वाले व्यक्ति नहीं थे। नौकरी के दौरान वे भारत के लगभग सभी भाषा-भाषी लोगों के संपर्क में आये। यहाँ तक कि व्यावसायिक जहाजों पर नौकरी करते हुए विदेशी भाषी लोगों से भी संपर्क हुआ। इन्होंने अपना आदर्श व गुरु चेखव को माना है। वे चेखव की चुटिलापन और कहानी शैली से काफी प्रभावित थे।

कहानीकार स्वयं प्रकाश की प्रमुख रचनाएँ निम्न है -

कहानी संग्रह - 1) मात्रा और भार (1975 ई॰)

2) सूरज कब निकलेगा (1981 ई॰)

3) आसमाँ कैसे-कैसे (1982 ई॰)

4) अगली किताब (1988 ई॰)

5) आएँगे अच्छे दिन भी (1991 ई॰)

6) आदमी जात का आदमी (1994 ई॰)

7) अगले जनम (2002 ई॰)

8) पार्टीशन (2002 ई॰)

9) संधान (2006 ई॰)

10) आधी सदी का सफरनामा (2006 ई॰)

11) नीलकांत का सफर (2015 ई॰)

12) छोटू उस्ताद (2015 ई॰)

13) नन्हा कासिद (2017 ई॰)

इनकी प्रसिद्ध कहानियों में पार्टीशन, मंजू फालतू, अगले जनम, क्या तूने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है?, संधान, नेताजी का चश्मा, आदमी जात का आदमी, बलि इत्यादि हैं।

उपन्यासः-	1) जलते जहाज पर (1982ई०) 2) ज्योतिरथ के सारथी (1987ई०) 3) उत्तर जीवनकथा (1993ई०) 4) बीच में विनय (1994ई०) 5) इंधन (2004 ई०)
निबंधः-	1) स्वांतः दुखाया (1983ई०) 2) दूसरा पहलू (1990ई०) 3) रंगशाला में एक दोपहर (2002ई०) 4) एक कहानीकार की नोटबुक (2010ई०) 5) क्या आप सांप्रदायिक है? (2011ई०)
साक्षात्कारः-	1) और फिर बयाँ अपना (2009ई०) 2) मेरे साक्षात्कार (2015ई०) 3) कहा सुना (2019ई०)
बाल साहित्यः-	1) परमाणु भाई की दुनिया में (1984ई०) 2) हमारे पाँच विज्ञानरत्न (1989ई०) 3) प्यारे भाई रामसहाय (2012ई०)
संपादित पुस्तकेंः-	1) सुनों कहानी (1983ई०) 2) श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ (1970-80ई०)
टेलीफिल्मः-	पार्टीशन
मंचनः-	(1) घर कैद (2) तूफान का जन्म (3) सबका दुश्मन (4) कहानी नैनसी का धूड़ा (5) चौबोली।

स्वयं प्रकाश जनवादी लेखन से जुड़े थे। जनवादी कहानीकारों ने कहानी को सीधे संघर्ष से जोड़ने का प्रयत्न किया। जनता के शोषण संघर्ष को प्राथमिकता दी। स्वयं प्रकाश ने कहानी कहने की अपनी शैली बनाई जिसमें गंभीर मुद्दे भी होते हैं और पाठक को सोचने पर मजबूर भी करती है। उनकी कहानियों के ऐसे पात्र होते है, जो हमारे आस-पास में रोजमर्रा की जिंदगी में देखने को मिल जाते है। यहाँ तक कि कई पात्र नाम और गुण के साथ यथावत कहानियों में उतर आये हैं। जैसे पार्टिशन कहानी का कुर्बान भाई लेखक का अच्छा मित्र था। हमला कहानी का जुबैद उसका पड़ोसी था। स्वयं प्रकाश ने भारतीय समाज की विसंगतियों रूढ़ियों और मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। साथ ही उन्होंने सांप्रदायिकता लिंग भेद, विस्थापन, जातिवाद आदि समस्याओं को भी उजागर किया है। भूमंडलीकरण के नाम पर बाजारवाद के बढ़ते वर्चस्व ने अनेक स्तरों पर मानवीय गरिमा का हनन किया है जिसे उन्होंने मंचू, फालतू, गौरी का गुस्सा, संधान आदि कहानियों में उजागर किया है।

स्वयं प्रकाश का 'जलते जहाज पर' एक ऐसा उपन्यास है जो समकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं और संघर्षों को बहुत ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। कैसे एक ईमानदार, संवेदनशील व्यक्ति इस सडी़ गली व्यवस्था में खुद को असहाय और असुरक्षित महसूस करता है। 'जलते जहाज पर' उपन्यास सिर्फ निराशा की कथा नहीं है। यह, यह भी दिखाता है कि अगर कुछ लोग चेत जाएँ तो वे जहाज से कूद सकते हैं, या उसे बुझाने की कोशिश कर सकते हैं। उपन्यास 'ज्योति रथ के सारथी' एक स्त्री केंद्रित उपन्यास है, जिसमें नारी चेतना, स्वतंत्रता संघर्ष और आत्म-साक्षात्कार जैसे विषयों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग सें स्वयं प्रकाश ने प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में 'उत्तरजीवन कथा' उपन्यास में एक प्रतीकात्मक कथा है, जो व्यक्ति के 'पुनर्जन्म' जैसे बोध और समाज की नैतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सड़ांध की पड़ताल करती है। 'बीच में विनय' उपन्यास में संवेदनशील, शिक्षित और सोचने समझने वाले व्यक्ति वैचारिक संकट, दुविधा और सामाजिक स्थिति के प्रति उसकी उलझन को सामने लाया है। अंतिम उपन्यास ईंधन में समकालीन भारतीय समाज, राजनीति और व्यक्ति की मानसिकता का अत्यंत प्रखर और व्यंग्यात्मक विश्लेषण है। यह उपन्यास उन स्थितियों को उजागर करता है। जहाँ मनुष्य और समाज दोनों अपने-अपने स्वार्थ की आग में जलते दिखाई देते हैं।

स्वयं प्रकाश की प्रमुख कहानियों में 'क्या तूने कभी सरदार भिखारी देखा है? में भीड़ की हिंसा में निर्दोष लोग मारे जाते हैं और बहुसंख्यक समाज मूक दर्शक बना रहता है। 'सूरज कब निकलेगा' कहानी प्रतीकात्मक है, जिसमें एक नई सुबह एक बेहतर समाज की प्रतीक्षा है। 'बर्डे' कहानी में एक जन्मदिन पार्टी के बहाने एक परिवार की बनावटी जीवन शैली को उजागर किया गया है। 'अशोक और रेणु की असली कहानी' मानव संबंधों की जटिलता और परिवारिक अपेक्षाओं की समीक्षा करती है। 'नगर नरभक्षी' कहानी बड़े शहरों की चकाचौंध, मूल्यों और मानवीय संबंधों के खोखलेपन को दिखाती है।

सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों से परिलक्षित स्वयं प्रकाश की प्रत्येक साहित्यिक रचना समाज को बड़ी सीख देती है। इनकी कहानियाँ आम जनता की रोजमर्रा की जिंदगी में आने वाली विसंगतियों को प्रकाशित करती है। हिन्दी साहित्य में दिए जाने वाले अनेक सम्मान एवं पुरस्कारों से इन्हें नवाजा गया है-

1) राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार

2) विशिष्ट साहित्य सम्मान

3) सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार

4) वनमाली पुरस्कार

5) पहल सम्मान

6) कथाक्रम सम्मान

7) भवभूति अलंकरण

8) बाल साहित्य पुरस्कार, साहित्य अकादमी, 2017

हिन्दी साहित्य के सधे हुए कहानीकार, नाटककार, निबंधकार स्वयं प्रकाश जी रक्त कैंसर से पीड़ित थे, जिससे 07 दिसंबर 2019 को मुंबई के लीलावती अस्पताल में उनका निधन हो गया।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्वयं प्रकाश का सम्पूर्ण रचनात्मक उपादान हिन्दी साहित्य में जनवादी चेतना, सामाजिक सरोकार और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने कहानी को आम जन के जीवन संघर्ष और यथार्थ से जोड़ते हुए उसे सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। उनकी कहानियों में साधारण व्यक्ति के सपने, संघर्ष और टूटन का जीवंत चित्रण है। उपन्यासों में उन्होंने समाज की जटिलताओं, व्यवस्था की विडंबनाओं और व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व को उजागर किया। उनके साहित्य में व्यंग्य, प्रतीक और संवेदना का अद्भुत समन्वय है, जो पाठक को न केवल सोचने पर मजबूर करता है बल्कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन की प्रेरणा भी देता है। इस प्रकार स्वयं प्रकाश हिन्दी साहित्य में एक ऐसे रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने साहित्य को जीवन और संघर्ष का दर्पण बना दिया।

संदर्भः-

बानो, सायरा. (2015). *कहानीकार स्वयं प्रकाशः रचना दृष्टि और रचना शिल्प*. कानपुर: अमन प्रकाशन.

स्वयं प्रकाश. (2014). *मेरी प्रिय कहानियाँ*. नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स. (फ्लैप से)

व्यास, लक्ष्मण. (2019). *कहा-सुना*. कानपुर: अमन प्रकाशन. (संपादकीय से)

स्वयं प्रकाश. (1987). *सूरज कब निकलेगा*. दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

स्वयं प्रकाश. (2019). *धूप में नंगे पाँव*. नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स.

स्वयं प्रकाश. (1982). *जलते जहाज पर*. दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

स्वयं प्रकाश. (1994). *बीच में विनय*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

स्वयं प्रकाश. (2004). *ईंधन*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

IIFS IMPACT FACTOR

CERTIFICATE OF ACKNOWLEDGEMENT

This is certified that our evaluator evaluated the Journal "**Padchinha"** E/P-ISSN **2231-1351** and the journal got the Impact Factor **8.0** and the process adopted for the evaluation of the journal is blind.

This Impact Factor/Evaluation is Valid up to **16/7/2026** .

Team IIFS
INDIA

Visit Us: http://impactfactorservice.com/

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinha@muditeducation.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation and Email

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.